* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

अवधकी वीथियोंमें रामलला

भगवती मातंगी-देवी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

आख्यानकानि भुवि यानि कथाश्च या या यद्यत्प्रमेयमुचितं परिपेलवं वा।
दृष्टान्तदृष्टिकथनेन तदेति साधो प्राकाश्यमाशु भुवनं सितरश्मिनेव॥

वर्ष ९४

गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, मार्च २०२० ई०

संख्या ३

पूर्ण संख्या ११२०

श्रीमातंगी-ध्यान

ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृण्वतीं श्यामलाङ्गीं
न्यस्तैकाङ्घ्रिं सरोजे शशिशकलधरां वल्लकीं वादयन्तीम्।
कह्लाराबद्धमालां नियमितविलसच्चोलिकां रक्तवस्त्रां
मातङ्गीं शङ्खपात्रां मधुरमधुमदां चित्रकोद्भासिभालाम्॥

(दुर्गासप्तशती अ०७)

मैं मातंगीदेवीका ध्यान करता हूँ। वे रत्नमय सिंहासनपर बैठकर पढ़ते हुए तोतेका मधुर शब्द सुन रही हैं। उनके शरीरका वर्ण श्याम है। वे अपना एक पैर कमलपर रखे हुए हैं और मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण करती हैं तथा कह्लार पुष्पोंकी माला धारण किये वीणा बजाती हैं। उनके अंगमें कसी हुई चोली शोभा पा रही है। वे लाल रंगकी साड़ी पहने हाथमें शंखमय पात्र लिये हुए हैं। उनके वदनपर मधुका हलका-हलका प्रभाव जान पड़ता है और ललाटमें बेंदी शोभा दे रही है।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर चैत्र, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, मार्च २०२० ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- श्रीमातंगी-ध्यान	३
२- कल्याण	५
३- परब्रह्म परमात्माकी बाल-क्रीड़ा [आवरणचित्र-परिचय]	६
४- आत्मनिवेदन (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७
५- नाम-स्मरण (समर्थ सद्‌गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज श्रीगोंदवलेकर)	९
६- 'जोड़ीं कितनी चीजें!' [कविता] (श्रीशरदजी अग्रवाल)	१०
७- भक्तके लक्षण (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	११
८- उत्तम पति प्राप्त करनेका साधनस्वरूप व्रत	१४
९- दुर्गा-पाठ [शतसहस्रायुतलक्ष चण्डीप्रयोग] (पं० श्रीहनूमानजी शर्मा)	१५
१०- भवितव्यता [बोध-कथा] (श्रीकन्हैयासिंहजी 'बिशेन')	१८
११- अहंकार कैसे मिटे? [साधकोंके प्रति] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१९
१२- चार मित्र [बोध-कथा] (डॉ० श्रीमती पुष्पारानीजी गर्ग)	२२
१३- 'लला फिर आइयो खेलन होरी' (श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)	२३
१४- परिवारका स्वरूप (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)	२५
१५- दृढ़ इच्छाशक्ति [बोध-कथा] (श्रीरामकिशोरजी)	२७
१६- असंग रहो और भगवान्‌को अपना मानो (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	२८
१७- वर्तमान युगमें ज्योतिषका महत्त्व (पं० श्रीसंजय शिवशंकरजी दवे, ज्योतिषाचार्य)	२९
१८- विश्नोई सम्प्रदायके जाम्भाणी साहित्यमें प्राप्त प्रेरक बोधकथाएँ (श्रीविनोद जम्भदासजी कड़वासरा)	३२
१९- आचरण-शुद्धिमें बोधकथाओंकी भूमिका (श्रीसुरेन्द्रजी माहेश्वरी)	३५
२०- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)	३७
२१- जीव-शिक्षा-सिद्धान्त [स्वामी श्रीहरिदासकृत अष्टादश पद]	३८
२२- प्यासी गौको जल पीनेसे रोकनेके कारण पुत्रहीनता	४१
२३- उदासीनाचार्य श्रीश्रीचन्द्रजी महाराज [संत-चरित] (स्वामी श्रीसर्वदानन्दजी महाराज, दर्शनरत्न)	४२
२४- व्रतोत्सव-पर्व [वैशाखमासके व्रत-पर्व]	४३
२५- साधनोपयोगी पत्र	४४
२६- कृपानुभूति	४६
२७- पढ़ो, समझो और करो	४७
२८- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- अवधकी वीथियोंमें रामलला	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- भगवती मातंगी देवी	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- अवधकी वीथियोंमें रामलला	(इकरंगा)	६
४- अरिष्टासुरका उद्धार	(,,)	५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹ 3,000); पंचवर्षीय US$ 250 (₹ 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—जैसे कृष्णपक्षके बाद शुक्लपक्ष आता है, रात्रिके बाद दिन आता है, आँधीका अँधेरा कटकर फिर उजाला होता है, वैसे ही दुःखका समय समाप्त होकर फिर सुखका समय आयेगा। निराशाकी रात्रि बीतकर फिर सुन्दर आशाका प्रभात होगा। किसी भी स्थितिमें घबराना नहीं चाहिये।

याद रखो—वस्तुतः दुःख तुम्हारे मनकी कामना और आसक्तिको लेकर ही होता है, वैसे दुःख कोई वस्तु नहीं है, इसी प्रकार सांसारिक वस्तुओंसे प्राप्त होनेवाला सुख भी मोहजनित ही है। सांसारिक वस्तुओंसे सुखकी आशा है, इसीसे बार-बार दुःख आता है; क्योंकि उनमें सुख यथार्थमें है ही नहीं।

याद रखो—सुखकी प्राप्ति कामनाकी पूर्तिसे नहीं होती; क्योंकि नयी-नयी कामनाएँ उत्पन्न होती ही रहती हैं। सर्वोत्तम सुख तो सन्तोषमें ही मिलता है।

याद रखो—जिसकी आवश्यकताएँ कभी पूरी नहीं होतीं, उसकी गरीबी भी कभी नहीं मिटती, चाहे उसकी बाहरी स्थिति कैसी भी क्यों न हो जाय। और जबतक गरीबी है, तबतक दुःख रहेगा ही।

याद रखो—नये-नये विशाल भोगोंको प्राप्त करने तथा भोगनेकी एवं विषयोंके संग्रह-परिग्रहकी इच्छा ही मनकी गरीबी है। यह गरीबी अज्ञानवश बुलायी हुई है, सन्तोषके द्वारा इसे निकालकर और फिर न बुलाकर मनुष्य सुखी हो सकता है।

याद रखो—भोग-पदार्थोंका कहीं अन्त नहीं है; क्योंकि प्रकृतिका विस्तार अनन्त है। इसी प्रकार कामनाका भी अन्त नहीं है; क्योंकि ज्यों-ज्यों भोग-पदार्थोंकी प्राप्ति होती है, त्यों-त्यों ईंधन-घी डालनेपर अग्निके बढ़नेकी भाँति कामनाएँ भी बढ़ती रहती हैं।

याद रखो—जिसको अपनी स्थितिमें सन्तोष है, वह दूसरोंके ऐश्वर्यकी उन्नति देखकर जलता नहीं, न कभी वैसा बननेकी आकांक्षा ही करता है। इसलिये वह सदा सुखी रहता है।

याद रखो—जो मनुष्य तड़कीले, भड़कीले और खर्चीले जीवनमें गौरव मानता है और ऐसे जीवनको आवश्यक तथा सुखका कारण समझता है, वह वस्तुतः बेसमझ है और उसे कभी सुख नहीं मिल सकता।

याद रखो—जो मनुष्य अपरिग्रही, त्यागी पुरुषोंके जीवनको आदर्श मानकर अपनी आवश्यकताओं और अभावोंको घटाकर सादा-सीधा बहुत कम खर्चका जीवन बना लेता है, वह सुखी रहता है। परन्तु जो मनुष्य संग्रही तथा भोगी मनुष्योंके जीवनको आदर्श मानकर अपनी आवश्यकताओं और अभावोंको बेहद बढ़ाकर भड़कीला और खर्चीला जीवन बना लेता है। उस प्रमादमें पड़े हुए मनुष्योंको बार-बार नये-नये दुःखोंका शिकार होना पड़ता ही है।

याद रखो—सच्चे सन्तोषके दर्शन होते हैं भगवान्‌पर और उनके मंगलमय विधानपर अडिग विश्वास करनेसे। जो मनुष्य भगवान्‌की मंगलमयी इच्छापर अपनेको छोड़ देता है और यथासाध्य भगवदाज्ञानुसार व्यवहार करता हुआ प्रत्येक स्थितिमें प्रसन्न रहता है। वह सदा ही अपनेको भगवान्‌के कृपापूर्ण कर-कमलकी छायामें पाता है। भगवान्‌की कृपासे उसके मनमें दुःखलेशका प्रवेश नहीं हो पाता।

याद रखो—जो भगवान्‌की मंगलमयी कृपाका आश्रय ले लेता है, भगवान्‌की कृपाशक्ति उसको सदा ही परम सुखकी अनुभूति कराती रहती है। वस्तुतः सांसारिक वस्तु और स्थितिमें सुख है ही नहीं, वह तो भ्रान्ति है और है आनेवाली विपरीत वस्तु एवं स्थितिकी दूसरी दिशा। इसे दुःखकी पूर्वभूमिका भी कह सकते हैं।

याद रखो—भगवत्कृपाका पूर्ण आश्रय लेनेपर सारी प्रतिकूलताएँ सदाके लिये अनुकूलतामें परिणत हो जाती हैं, इसलिये दुःख भी सदाके लिये मिट जाते हैं—फिर सबमें सब समय अनुकूलता और सुख ही प्राप्त होता है, वस्तुका स्वरूप चाहे कैसा भी रहे—

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

परब्रह्म परमात्माकी बाल-क्रीड़ा

श्रुतियाँ 'नेति-नेति' कहकर जिस परमात्माका वर्णन करती हैं, जो मन तथा वाणीसे परे है, सम्पूर्ण विश्वका जो मूल कारण है, जो सर्वेश्वर और सर्वाधार है, जिसके विषयमें वेदवाणी कहती है—**'न तस्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः।'**

अर्थात् 'उसे कोई उत्पन्न करनेवाला नहीं और उसका कोई स्वामी भी नहीं।'

वही निर्गुण, निराकार, अनादि, अनन्त, अव्यक्त, सर्वशक्तिमान् परम ब्रह्म प्रेमके वशमें होकर नन्हा-सा बालक बन जाता है। अपनेको समर्पित कर देता है वह निखिलब्रह्माण्डनायक।

महाराज दशरथने पुत्रेष्टि यज्ञ किया और अग्निदेवने उन्हें प्रकट होकर चरु (पायस) दिया, यह सब तो एक निमित्त है। यह भी लीलामयकी वैसी ही लीला है, जैसे दूसरे नर-नाट्य उन्होंने किये। महाराज दशरथ तो साकेतके नित्य पिता हैं और माता कौसल्या नित्य माता हैं। परात्पर परमब्रह्म साकेतविहारी श्रीराम सदा-सर्वदा श्रीदशरथनन्दन एवं कौसल्यानन्दवर्धन ही हैं। अतः पृथ्वीपर उनके प्रकट होनेके जितने कारण कहे जाते हैं—सब लीलामात्र हैं। यहाँ उनकी बालक्रीड़ाकी एक मनोरम झाँकी प्रस्तुत की जा रही है—

श्रीराम कुछ बड़े हो गये हैं। अब नगरके महाभाग बालक सबेरे ही राजभवनके द्वारपर आ जाते हैं। वे प्रतीक्षा करते हैं अपने प्राणसर्वस्व सखाके आगमनकी। भीतरसे भरतलालजी अनुरोध करते हैं—

खेलन चलिये आनंदकंद।
सखा प्रिय नृप द्वार ठाढ़े बिपुल बालक बृंद॥

युग-युगके, जन्म-जन्मके साधनोंका जब परिपाक होता है, तब कहीं बड़े-बड़े योगीन्द्र-मुनीन्द्र अपने निष्पाप निर्मल एकाग्र चित्तमें उस सौन्दर्यसिन्धुकी एक क्षणके लिये एक झलक पाते हैं और आज यह सकल कल्याणगुण-गणैकधाम परमानन्दचिन्मूर्ति अयोध्याकी वीथियोंमें बालकोंके साथ हँसता, बोलता, किलकता अवधवासियोंको सुख देता इधर-से-उधर दौड़ रहा है। झाँकी द्रष्टव्य है—

भगवान् राम हाथोंमें सुन्दर-सुन्दर छोटे-छोटे धनुष-बाण लिये, कमरमें तरकस कसे तथा पीताम्बर पहने और पैरोंमें सुन्दर जूतियाँ धारण किये हैं। उनकी पैंजनी और किंकिणीकी ध्वनि सुनकर मन आनन्दित होता है। वे भुजाओंमें सुन्दर पहुँची तथा बिजायठ धारण किये हैं, वक्षःस्थलपर पदिक और हार सुशोभित हैं तथा उनके कानोंमें कुण्डल और माथेपर तिलक सुशोभित है। सिरपर लाल टोपी है, नेत्रकमल अति विशाल हैं तथा मुख अति सुन्दर है। अनुज और अन्य बालकोंसहित सर्वांग-सुन्दर भगवान् रामको नर-नारी इस प्रकार एकटक देखते रह जाते हैं, जैसे हरिण दीपकको। इस प्रकार अवधकी गलियोंमें गोली, भँवरा, लट्टू और डोरीसे खेलती हुई प्रभुकी उस मधुर मूर्तिको देखकर तुलसीदासजी कहते हैं कि यह मूर्ति मेरे हृदयमें निवास करे—

ललित-ललित लघु-लघु धनु-सर कर,
तैसी तरकसी कटि कसे, पट पियरे।
ललित पनिही पाँय पैंजनी-किंकिनि-धुनि,
सुनि सुख लहै मनु, रहै नित नियरे॥
पहुँची अंगद चारु, हृदय पदिक हारु,
कुंडल-तिलक-छबि गड़ी कबि जियरे।
सिरसि टिपारो लाल, नीरज-नयन बिसाल,
सुंदर बदन, ठाढ़े सुरतरु सियरे॥
सुभग सकल अंग, अनुज बालक संग,
देखि नर-नारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे।
खेलत अवध-खोरि, गोली भौंरा चक डोरि।
मूरति मधुर बसै तुलसीके हियरे॥

आत्मनिवेदन

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

आत्मनिवेदनके सम्बन्धमें सूक्ष्म विचार करना चाहिये। इसमें 'आत्म' शब्द आत्माके सहित तीनों शरीरोंका वाचक है और 'निवेदन'का अर्थ अर्पण है। जिन वस्तुओंपर हमने अपना अधिकार जमा रखा है, उनको उठाकर भगवान्‌के अर्पण कर देना आत्मनिवेदन है। यह शरणागतिका एक प्रधान अंग है अथवा इसे भक्तिका भी एक प्रधान अंग कह सकते हैं। शरणागतिके चार भेद हैं। शरणागतिका पहला अंग है—भगवान्‌के नाम या स्वरूपको पकड़ना। दूसरा अंग है—भगवान्‌के अधीन हो जाना अर्थात् उनके अनुकूल बन जाना; वे जिस प्रकार चलायें उसी प्रकार चलना। तीसरा अंग है—भगवान् जो कुछ भी विधान करें, उसीमें प्रसन्न रहना और चौथा अंग है—भगवत्परायण हो जाना, उन्हींकी गोदमें जाकर बैठ जाना और अपने-आपको सर्वथा भगवान्‌के अर्पण कर देना। जब मैं स्वयं ही भगवान्‌के अर्पण हो गया, तो मेरी सारी चीजें भी उनके अर्पण हो गयीं।

आत्मसमर्पण नवधाभक्तिका अन्तिम अंग है। यदि कोई पूछे कि सेव्य-सेवक-भाव और आत्मनिवेदनमें क्या अन्तर है। तो कहा जा सकता है कि यों तो कोई फरक नहीं है; क्योंकि आगे चलकर तो दास्यभाववाला भी आत्मसमर्पण करेगा और जिसने आत्मनिवेदन कर दिया वह दास ही है; परंतु उदाहरणसे इनका अन्तर इस प्रकार समझ सकते हैं। एक दूकानपर दो मुनीम काम करते हैं, उसका जो कुछ लेन-देन, माल-खजाना है; उन सबको वे मालिकका ही मानते हैं। परंतु उनमेंसे एक तो शरीर-निर्वाहके लिये अन्न-वस्त्रमात्र ही लेता है और दूसरा वेतन भी लेता है। इनमें पिछलेका सकाम और पहलेका निष्कामभाव है। निष्कामभाववालेका दर्जा ऊँचा है। दोनोंका ही सेव्य-सेवकभाव है; किंतु इनमें पहले दर्जेवाले भक्तने तो आत्मसमर्पण किया, दूसरेने नहीं।

प्राचीनकालमें एक और प्रकारके भी दास हुआ करते थे। वे दास ही जन्मते और दास ही मरते थे। उन्हें वेतन आदि कुछ भी नहीं मिलता था और वे दहेज आदिमें भी दिये जा सकते थे। राजाओंमें कहीं-कहीं तो यह प्रथा अब भी है। आत्मसमर्पणका दर्जा इन दास-दासियोंसे भी ऊँचा है। जैसे दो सेनाएँ लड़ रही हैं, उनमेंसे एक राजाकी सेना परास्त हो गयी, वह राजा हार गया तो वह दूसरेको आत्मसमर्पण कर देता है; कहता है कि चाहे मारो, चाहे छोड़ो या राज्य लौटा दो, तुम्हें अधिकार है। परंतु इस आत्मसमर्पण करनेवालेको यदि विपक्षी राजा मारे तो उसको दुःख भी हो सकता है; क्योंकि उसने तो लाचार होकर शरण ली है। परंतु जो पुरुष श्रद्धा-भक्ति और प्रेमसे आत्मसमर्पण करता है, उसको तो मारने-काटनेपर भी आनन्द ही होता है; दास-दासियोंको भी मारनेपर दुःख होता है; क्योंकि उनका आत्मसमर्पण श्रद्धा-भक्तिरहित है। जो प्रेम, भक्ति और श्रद्धासे आत्मसमर्पण करता है, उसका कुछ भी करो, उसको दुःख नहीं होता। जैसे राजा बलिका आत्मसमर्पण प्रेम और श्रद्धापूर्वक था, भय या लाचारीसे नहीं था। उसको गुरु शुक्रने यह बता दिया कि यह साधारण ब्राह्मण नहीं है, तुम्हारा सब कुछ ले लेगा, तो भी उसने जान-बूझकर प्रेम और भक्तिसे अपना सर्वस्व भगवान्‌के अर्पण कर दिया और कहा कि जब स्वयं भगवान् इस प्रकार मेरा सर्वस्व लेते हैं तो मेरे लिये इससे अधिक आनन्द और है ही क्या? जो इस प्रकार भगवान्‌को आत्मसमर्पण करता है, उसके मन, बुद्धि और शरीर आदि सब भगवान्‌के ही हो जाते हैं। उसका उनपर कोई अधिकार नहीं रह जाता। जड़ वस्तुओंमें इसका उदाहरण कठपुतली हो सकती है। कठपुतलीने नटको आत्मसमर्पण कर रखा है। नट उसका चाहे सो करे! वह उसे कपड़ा पहनाये, युद्ध कराये या और जो कुछ करे, वह अपनी तरफसे कुछ नहीं करती। परंतु कठपुतलीमें चेतना-शक्ति नहीं है, वह जड़ है। जो पुरुष चेतनाशक्ति रहते हुए अपने-आपको उस कठपुतलीके समान भगवान्‌के अर्पण कर देता है, उसमें शरणागतिके और अंग भी आ जाते हैं। शरणागतिके लिये इतना

उपयुक्त दूसरा उदाहरण स्मरण नहीं आता। यदि बाजीगरके बन्दरका उदाहरण दें तो वह तो मालिकके आज्ञानुसार चलनेका होगा। यद्यपि यह भी शरणागतिका एक अंग है, परंतु प्रधान बात तो अपने-आपको अर्पण कर देना ही है। जैसे हमलोग एक गाय किसी ब्राह्मणको अर्पण कर दें तो फिर उस गायपर उस ब्राह्मणका अधिकार हो जाता है, इसी प्रकार भगवान्‌को अपने-आपको अर्पण कर देनेसे अपना अधिकार नहीं रह जाता है। यदि बारीकीसे विचार किया जाय तो पहलेसे ही चीजें परमात्माकी ही हैं, पर हमने उनपर अपना अधिकार जमा रखा है, वह उठा लिया जाय। जो इस प्रकार समझ जाता है, उसको लोकदृष्टिमें दीखनेवाले कैसे ही सुख-दु:ख आकर प्राप्त हों, भगवान् उसका जो चाहे सो करें, उसको किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता। इतना ही नहीं, वह आनन्दमग्न हो जाता है। उसको मालिकके सुखसे ही सुख होता है और मालिक कभी दुखी नहीं होते, इसलिये वह भी सदा सुखी रहता है। फिर उसके द्वारा जो नये कर्म होते हैं, वे मालिकके अनुकूल उन्हींके आज्ञानुसार होते हैं; क्योंकि उसके मन, बुद्धि और शरीर प्रभुके अर्पण हो चुके हैं। सारी वस्तुएँ मालिककी हैं, उनपर वह अपनी आज्ञा नहीं चलाता। भक्तिपूर्वक आत्मसमर्पण करनेके कारण वह भगवान्‌के शरण हो जाता है और फिर परमात्माको कभी नहीं भूलता, निरन्तर उन्हींका चिन्तन करता रहता है।

शरणापन्न भक्त परमात्माको प्राप्त हो जाता है। वह चाहे उस महाप्रभुसे अलग रहकर चिन्तन करे, चाहे उसमें सम्मिलित होकर। चाहे तद्रूप होकर रहे, चाहे भिन्न सत्तासे रहे। परंतु इस विषयमें उसका कोई संकल्प नहीं होता, उसका मालिक जो चाहे, सो कराये। वह तो अपना सारा स्वत्व उसीको सौंप देता है। शरणागत भक्तकी अपनी तो कोई इच्छा ही नहीं होनी चाहिये। यदि उसमें कोई इच्छा हो जाती है तो उसके आत्मसमर्पणमें कसर है। फिर भी यह कोई बहुत बड़ा दोष नहीं है; क्योंकि बलिने भी तो पातालमें रहना माँगा था। वह अपनी ओरसे तो कुछ नहीं कहता, परंतु स्वामीके पूछनेपर अपनी इच्छा बता देना भी दोष नहीं है। स्वामी देना चाहे तब भी कुछ न लेना और भी उत्तम है—यह बलिके आत्मसमर्पणसे भी ऊँची बात है। वरदान देनेकी बात कहनेपर वह सच्चा आत्मसमर्पण करनेवाला भक्त यह कहता है—'हे प्रभु! किसको वरदान देते हैं, मैं तो आपकी ही चीज हूँ। कुछ दे-लेकर मुझे अलग करते हैं क्या? यदि यही इच्छा है तो ऐसा कर दीजिये, आपकी ही इच्छापर तो सबकुछ निर्भर है। पिताकी इच्छा है—वे पुत्रको यों ही बिना कुछ दिये घरके बाहर कर दें, सौ-दो सौ रुपये देकर कर दें अथवा सारी सम्पत्ति दे दें। पिता देख लेते हैं कि पुत्रकी कुछ इच्छा है तभी अलग करते हैं, नहीं तो क्यों करें। सो हे प्रभु! आप यदि वरदान देनेकी बात कहते हैं तो अवश्य मेरे मनमें अलग रहनेका भाव होगा, नहीं तो आप इस प्रकार कैसे कहते? नाथ! अवश्य मेरी कोई नालायकी हुई है, मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ। जो कुछ है सो तो आपका ही है। वरदान लेकर अलग कहाँ रखूँ?'

इस प्रकारका आत्मसमर्पण सख्यभाव और दास्यभाववाले भी कर सकते हैं। अत: आत्मसमर्पण भक्तिका एक पृथक् अंग है। सख्य और दास्यभाववाले ऐसा कर भी सकते हैं और नहीं भी करें तो कोई आपत्ति नहीं। यदि कहा जाय कि मित्रता तभी पूरी होगी, जब आत्मसमर्पण कर दिया जायगा; सो ठीक है, परंतु मित्र तो इसके बिना भी हो सकता है। विभीषणके आत्मसमर्पणमें इतना महत्त्व नहीं प्रतीत होता। श्रीकृष्णको सखाभावसे आत्मसमर्पण तो गोपियोंने ही किया था। वे अपने ऊपर अपना कोई अधिकार नहीं समझती थीं। एकमात्र श्रीकृष्णका ही अधिकार मानती थीं। एक पुरुषमें नवधा भक्तिके सारे भेद भी रह सकते हैं और दो-चार अंग भी रह सकते हैं। भजन-ध्यान, सेवा-नमस्कार करते हुए आत्मसमर्पण नहीं भी हो सकता है। हाँ, और सब भक्तियाँ आ जानेपर भी यदि आत्मसमर्पण नहीं होता तो इतनी कमी ही है। जिसमें आत्मसमर्पण नहीं है, वह भी भक्त तो है और कहलाता भी भक्त ही है, परंतु आत्मसमर्पण कर देनेवाले भक्तकी तो महिमा ही अलग है। इसलिये नवधा भक्तिमें इस अंगको अन्तिम बतलाया गया है। यही सबसे ऊँचा भाव है।

नाम-स्मरण

(समर्थ सद्गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज श्रीगोंदवलेकर)

नित्यनियम करनेका अर्थ

नित्यनियम करनेका अर्थ है निरन्तर नित्यमें रहना। हम मूलतः स्वयं नित्य हैं, फिर भी अनित्यमें रहते हैं। परमात्मा नित्य है, उसे भूलकर, विषय जो अनित्य है, उसमें व्यग्र हैं, अतः हमें परमात्माका विस्मरण होता है। जिसके कारण उसका स्मरण होगा, उसीको नित्यनियम कहते हैं। हमें हमेशा नित्यनियममें रहना चाहिये, किन्तु वैसा आचरण नहीं होता। इसलिये प्रतिदिन कुछ समयके लिये उसका स्मरण होनेके लिये पठन करना चाहिये, जो पठन किया होगा उसका चिन्तन करना चाहिये, जिससे हमें उसकी आदत होगी। जो अखण्ड नामस्मरण करता है, वह नित्यनियममें ही रहता है। यदि सच्चे अर्थसे किसीने नित्यनियम किया है तो ब्रह्मानन्द महाराज (ब्रह्मचैतन्य महाराजके सर्वश्रेष्ठ शिष्य)-ने ही। हमें सोचना चाहिये कि हम नित्यनियममें कैसे रह पायेंगे। इसके लिए गुरु-आज्ञा ही प्रमाण है। वही सच्चा साधन है। गुरु-आज्ञा ही नित्यनियम है। हमें उसकी शरणमें जाना चाहिये। प्रतिदिन थोड़ा पठन, तदनन्तर मनन, मननके पश्चात् आचरण और अन्तमें गुरुकी शरणमें जाना, यही साधकका साधनक्रम है और यही उसका नित्यनियम भी है।

आयु ज्यों-ज्यों बढ़ती है, त्यों-त्यों साधककी परमात्मासे मिलनेकी उत्कंठा बढ़नी चाहिये। केवल नित्यनियम है, इसलिये विवश होकर नामस्मरण नहीं करना चाहिये। साधकको हर बात दिलसे करनी चाहिये। यह ध्यानमें रखा जाय कि शंकित मनसे की हुई साधनामें अपवित्रता आ जाती है। परमार्थमें श्रद्धा ही मुख्य पूँजी है। ऐसी श्रद्धा हो कि साधनामें सन्तोष ही सर्वस्व है। जैसे थर्मामीटरमें हम बुखार कितना है, यह देख पाते हैं, वैसे साधना करते समय हमें सन्तोष कितना मिलता है, यह भी देखना चाहिये। साधकको विश्वमें कितने दोष हैं, यह नहीं देखना चाहिये; क्योंकि उन दोषोंके बीज हममें ही होते हैं। कीर्ति-लालसा, मान-सम्मान बहुत घातक होते हैं। बड़े-बड़े साधकोंकी भी कीर्ति-लालसाके कारण अधोगति होती है। उसी प्रकार धन और कामवासनाका संयम न रखनेके कारण साधकोंका भी परमात्माके पास पहुँचते-पहुँचते पतन होने लगता है। विश्वके ये सारे बन्धन हमें बन्धनमें डालते हैं। भगवान्‌का पाश ही असली पाश है; वही पाश, वही बन्धन हमें सभी बन्धनोंसे मुक्त करता है और शाश्वत सुखका लाभ करा देता है।

जगमें प्राप्त होनेवाले मान-सम्मानसे कभी मोहित नहीं होना चाहिये। धन और कामवासनाकी अपेक्षा कीर्ति देहबुद्धिको अधिक मोहित करती है, वहाँ हमें बहुत सावधान रहना चाहिये। जहाँ मान-सम्मान, कीर्ति मिलना सम्भव है, वहाँ जाना टाल देना चाहिये। यदि उसे टालना सम्भव नहीं लगता हो तो 'भगवान्‌का दान है' ऐसा मानकर उसको स्वीकार करना चाहिये। जो वास्तवमें बड़ा होता है या श्रेष्ठ होता है, वह सम्मानकी कभी अपेक्षा नहीं करता और वह यदि सम्मानित किया गया तो उसकी उसे कभी महत्ता नहीं लगती। हमें स्वयं यह परखकर देखना चाहिये कि क्या हमें मान-सम्मान प्रिय लगता है? उससे हमें ज्ञात होगा कि हम स्वयं कितने श्रेष्ठ हैं? आते-जाते भगवान्‌को प्रणाम करे, राम-राम कहे। एक बार भगवान्‌के प्रति रुचि निर्माण हो गयी तो वह छूटेगी नहीं।

निरन्तर सन्तोषका मार्ग

उसकी माता धन्य है, जिसे लगातार रामसेवा करनेका अवसर मिला। स्वार्थरहित रामसेवा ही जीवनमें सबसे बड़ा लाभ है। मुखसे नामस्मरण, शरीरसे भगवत्-सेवा, चित्तमें भगवान्‌का ध्यान, मनकी समर्पित भावना—ये ही भगवत्-सेवा के साधन हैं, इसके अलावा अन्य कोई साधन नहीं है। जो-जो दिखायी देता है, वह नाशवान् है। यह तत्त्व समझकर सज्जन लोग जीवन व्यतीत करते हैं। सामान्य जनताको भी वैसा ही जीवन व्यतीत करना है। सन्तानको सँभालकर रखना चाहिये। गृहस्थीमें उदासी नहीं चाहिये। गृहस्थीमें

कई संकट आते हैं, फिर भी गृहस्थीमें इन संकटोंसे संघर्ष करना चाहिये, उन्हें मात देना ही जीवन है। मैं सुनना चाहता हूँ कि तुम संकटोंको पार कर चुके हो। संकटोंसे परेशान होनेपर भी उनका स्पर्श चित्तको नहीं होना चाहिये। यह तत्त्व ध्यानमें रखकर, अपनेमें भगवान्‌का ही चिन्तन चलना चाहिये। मेरा यह कहना तुम साधारण मत समझो, विश्वमें इसके सिवाय दूसरी हितकारक बात ही नहीं है। मनमें यह धारणा होनी चाहिये कि मैं किसी बातका कर्ता नहीं हूँ। मैं तो अब रामका हो गया हूँ। सिवाय नामस्मरणके कोई बात चित्तमें नहीं आनी चाहिये। मानापमानका पूर्ण त्याग करके, रघुनन्दन रामका ही ध्यान करते रहना चाहिये। जितना बन सके उतना रामनाम जपना चाहिये, चित्त प्रभु रामकी ओर रखना चाहिये, परिवारमें रहते हुए भी, पत्नी, बालकोंके साथ रहकर भी प्रभु रामका ध्यान करो। परमात्माको साक्षी रखकर रघुनन्दनका भजन, पूजन, चिन्तन करो। हिम्मत मत हारो; क्योंकि रघुवीरका सहारा तुम्हें है।

बुढ़ापा आ गया, शरीर क्षीण हो गया, फिर भी अहंकार वैसा ही है, उसका त्याग करो। वृद्धावस्थामें गृहस्थीकी समस्याओंकी ओर कम ध्यान दो। पुत्रोंका मार्गदर्शनकर सुखी रहना चाहिये। आवश्यकता पड़नेपर औषधका सेवन करो, लेकिन दुखी मत बनो। शरीर थकनेपर भी आसक्ति कम नहीं होती। जबतक शरीर है, तबतक अहंकार—यह मेरा, वह मेरा-की वृत्ति बनी रहेगी। उसीको रामके चरणोंमें अर्पित कर दो, उसे पुनश्च पनपने मत दो। गृहस्थी-सम्बन्धी, परमार्थ-सम्बन्धी जो भी हुआ वह अच्छा ही हुआ, और भगवान् रामकी कृपासे ही हुआ। यह ध्यानमें रखिये कि यह सिवाय भगवान्‌की कृपाके होता नहीं। अतः पूज्य रघुपतिको कभी मत भूलो। बढ़ती आयुके कारण शरीर क्षीण होगा ही, इसलिये सावधान रहकर कार्य करना चाहिये। शरीरको आलसी नहीं होने देना चाहिये। परिस्थितिके अनुसार कार्यरत रहना कर्तव्य ही है। वृद्धावस्थाके कारण हम शरीरके अधीन हो जाते हैं, वृद्धावस्था स्पष्ट दिखायी देती है। फिर भी भक्तिभाव क्षीण नहीं होना चाहिये। आनन्द-मंगलपूर्वक गृहस्थी करके चित्तमें सन्तोष रखना चाहिये। चित्तके सन्तोषकी स्थिति दृढ़ रखो, उसे किसी बातपर अवलम्बित मत रखो। व्यवहारकी लाभ-हानिमें मन कार्यरत न रखते हुए भी सन्तोष प्राप्त हो सकता है। अहंकार ही सन्तोष प्राप्त न होनेमें बड़ी बाधा है। हम स्वयं इसके लिये जिम्मेदार हैं। देह-शरीर जबतक है, तबतक उससे सम्बन्धित दुःख या भोग तो आनेवाले ही हैं, उसकी जिम्मेदारी शरीरपर छोड़ दो। लेकिन मनके सन्तोषकी अवस्था मत छोड़ो। उसे बनाये रखो। यदि हमारा दृढ़ विश्वास प्रभु राममें होगा तो चिन्ताका कोई कारण ही नहीं रहेगा। ऐसी मनकी अवस्था रामनाम, राम-राम कहनेसे ही होती है। हमें भगवान्‌से एकरूप हो जाना चाहिये। दयाघन रघुनाथ निश्चय ही कृपा करेंगे।

[संग्राहक—श्रीगोविन्द सीताराम गोखले]

‘जोड़ीं कितनी चीजें!’

(श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)

कोई सदा जीता नहीं
मृत्यु ही एक सत्य है।
कर सको तो कुछ करो
जो परम कर्तव्य है॥

तिल-तिल जतन लगाकर जोड़ीं
कितनी चीजें तन-धन खाँपा।
भरा नहीं मन, फिर लाओगे
देखो ये तो फिर से प्यासा॥

प्रारम्भिक जीवन की सोचो
जितना सोचा था, सब पाया।
फिर भी देखो इस मन ने नित
नया कोई इक लक्ष्य बनाया॥

मरते दम तक यूँ ही ये मन
सब कुछ पाकर रहेगा प्यासा।
फिर क्यों खोते दुर्लभ जीवन
क्यों करते दिन-रात दुराशा॥

भक्तके लक्षण

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान्‌के भक्तोंका बड़ा महत्त्व है। वे जगत्‌के लिये आदर्श होते हैं; क्योंकि भगवद्भक्तिके प्रतापसे उनमें दुर्लभ दैवी गुण अनिवार्यरूपसे प्रकट हो जाते हैं, जो उनके स्वाभाविक लक्षण होते हैं। भक्तका स्वरूप जाननेके लिये उन लक्षणोंका जानना आवश्यक है। उनमेंसे कुछ ये हैं—

१-भक्त अज्ञानी नहीं होता, वह भगवान्‌के प्रभाव, गुण और रहस्यको तत्त्वसे जाननेवाला होता है। प्रेमके लिये ज्ञानकी बड़ी आवश्यकता है। किसीको किसी अंशमें भी जाने बिना उससे प्रेम नहीं हो सकता और प्रेम होनेपर ही उसका गुह्यतम यथार्थ रहस्य जाना जाता है, भक्त भगवान्‌के गुह्यतम रहस्यको जानता है, इसीलिये भगवान्‌के प्रति उसका प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहता है। भगवान् रससार हैं। उपनिषदें भगवान्‌को **'रसौ वै सः'** कहती हैं। इस प्रेममें भी द्वैत नहीं भासता। प्रेमकी प्रबलतासे ही राधाजी श्रीकृष्ण बन जाती हैं और श्रीकृष्ण श्रीराधाजी। कबीर साहब कहते हैं—

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नायँ।
प्रेम-गली अति साँकरी, यामें दो न समायँ॥

वस्तुतः ज्ञानी और भक्तकी स्थितिमें कोई अन्तर नहीं होता। भेद इतना ही है, ज्ञानी **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** कहता है और भक्त **'वासुदेवः सर्वमिति'**। अथवा गोसाईंजीकी भाषामें वह कहता है—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

२-भगवान्‌का भक्त निर्भय होता है। वह जानता है कि समस्त विश्वके स्वामी, यमराजका भी शासन करनेवाले भगवान् श्यामसुन्दर हर घड़ी मेरे साथ हैं, मेरे रक्षक हैं। फिर उसे डर किस बातका हो? भगवान्‌की शरण जिसने ले ली, वही निर्भय हो गया। लंकामें रावणके द्वारा अपमानित होकर जब विभीषण नाना प्रकारके मनोरथ करते हुए भगवानकी शरणमें आये, तब उन्हें द्वारपर खड़े रखकर सुग्रीव इस बातकी सूचना देने भगवान् श्रीरामके पास गये। श्रीरामने सुग्रीवजीसे पूछा, क्या करना चाहिये? उन्होंने उत्तर दिया—

जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया॥
भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥

समीप ही बैठे हुए भक्तराज हनुमान्‌ने मन-ही-मन सोचा, सुग्रीव क्या कह गये। अरे, जिसका नाम भूलसे निकल जानेपर मनुष्य संसारके बन्धनसे छूट जाता है, उस मेरे रामके चरणोंमें आनेवालेके लिये बन्धनकी बात कैसी? परंतु स्वामी और सेनापतिके बीचमें बोलना अनुचित समझकर हनुमान् चुप रहे।

शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामने सुग्रीवकी प्रशंसा करते हुए अपना व्रत बतलाया—

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भय हारी॥

हनुमान्‌का मन खिल उठा। वाल्मीकिरामायणमें भी भगवान् श्रीरामने ऐसी ही बात कही है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

'जो एक बार भी मेरी शरण होकर यह कह देता है कि मैं तेरा हूँ, मैं उसको सम्पूर्ण भूतोंसे अभय कर देता हूँ, यह मेरा व्रत है।' भला, ऐसी हालतमें भगवान्‌का सच्चा भक्त निर्भय क्यों न होगा?

३-भक्तका किसी विषयमें ममत्व नहीं होता। उसका सारा ममत्व एकमात्र अपने प्राणाराध्य भगवान्‌में हो जाता है। फिर जगत्‌के पदार्थोंमें कहीं उसका ममत्व यदि रहता है तो उनको भगवान्‌के पूजनकी सामग्री या भगवान्‌की वस्तु समझकर ही रहता है, अपने या अपने भोगके सम्बन्धसे नहीं। रामचरितमानसमें भगवान्‌ने कहा है—

जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥

संसारमें मनुष्य चारों ओर ममताके बन्धनसे जकड़ा हुआ है। उसका एक-एक रोम ममत्वके धागेसे बँधा है। भगवान् कहते हैं—'मनुष्य माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, मकान, सुहृद् और परिवार आदि सबमेंसे ममताके सूत्रोंको अलग करके उनकी एक ही

मजबूत डोरी बट ले और उस डोरीके द्वारा अपने मनको मेरे चरणोंसे बाँध दे, तो वह सज्जन मेरे मन-मन्दिरमें उसी प्रकार निवास करता है, जिस प्रकार लोभीके मनमें धन।' यह ममताका बन्धन इसीलिये कच्चे धागेका बतलाया गया है कि इसके टूटते देर नहीं लगती। जहाँ कहीं स्वार्थमें बाधा आयी कि ममताका धागा टूटा। विषयजनित सारा प्रेम अपने लिये होता है न कि प्रेमास्पदके लिये। इसलिये यह टूटता भी बहुत शीघ्र है। परंतु जैसे धागोंकी बड़ी मजबूत रस्सी बट लेनेपर वह नहीं टूटती, इसी प्रकार जगत्‌की सारी ममता सब जगहसे बटोरकर एक भगवान्‌के चरणोंमें लगा दी जाय तो फिर उसके नष्ट होनेकी कोई सम्भावना नहीं। इसीलिये यह कहा गया है कि भगवान्‌के प्रति होनेवाला सच्चा प्रेम सदा बढ़ता ही रहता है, कभी घटता नहीं।

संसारमें दुःखोंका एक प्रधान कारण ममता है। न मालूम कितने लोग प्रतिदिन मरते हैं और कितने लोगोंके धनका नित्य नाश होता है, पर हम किसीके लिये नहीं रोते; किंतु यदि हमारे घरका कोई आदमी मर जाय या अपना कुछ धन नष्ट हो जाय तो शोक होता है। इसका कारण ममता ही है। मान लीजिये, हमारा एक मकान है, यदि कोई आदमी उसकी एक ईंट निकाल देता है तो हमें बहुत बुरा मालूम होता है। हमने उस मकानको बेच दिया और उसकी कीमतका चेक ले लिया। अब उस मकानकी एक-एक ईंटसे सारी ममता निकलकर हमारी जेबमें रखे हुए कागजके टुकड़े चेकमें आ गयी। अब चाहे मकानमें आग लग जाय, हमें कोई चिन्ता नहीं। चिन्ता है उस कागजके चेककी। बैंकमें गये, चेकके रुपये हमारे खातेमें जमा हो गये। अब भले ही बैंकका लिपिक उस कागजके टुकड़ेको फाड़ डाले, हमें कोई चिन्ता नहीं। अब उस बैंककी चिन्ता है कि वह कहीं फेल न हो जाय; क्योंकि उसमें हमारे रुपये जमा हैं। इस प्रकार जहाँ ममता है, वहीं शोक है, यदि हमारी सारी ममता भगवान्‌में अर्पित हो जाय, फिर शोकका जरा-सा भी कारण न रहे। भक्त तो सर्वस्व अपने प्रभुके अर्पणकर उनको अपना बना लेता है और स्वयं उनका बन जाता है। उसमें कहीं दूसरेके लिये ममता रहती ही नहीं, इसीलिये वह शोकरहित हुआ सर्वदा आनन्दमें मग्न रहता है।

४-भक्तमें अभिमान नहीं होता, वह तो सारे जगत्‌में अपने स्वामीको व्याप्त देखता है और अपनेको उनका सेवक समझता है। सेवकके लिये अभिमानको स्थान कहाँ? उसके द्वारा जो कुछ होता है, सो सब उसके भगवान्‌की शक्ति और प्रेरणासे होता है। ऐसा विनम्र भक्त सदा सावधानीसे इस बातको देखता रहता है कि कहीं मेरे किसी कार्यद्वारा या मेरी किसी चेष्टाद्वारा विश्वव्याप्त मेरे स्वामीका तिरस्कार न हो जाय। मेरे द्वारा सदा-सर्वदा उनकी आज्ञाका पालन होता रहे, मैं सदा उनकी रुचिके अनुकूल चलता रहूँ। वह अपनेको उस सूत्रधारके हाथकी कठपुतली समझता है, सूत्रधार जैसे नचाता है, पुतली वैसे ही नाचती है, वह इसमें अभिमान क्या करे? अथवा यों समझिये कि यह सारा संसार स्वामीका नाट्यमंच है, इसमें हम सभी लोग नट हैं, जिसको स्वामीने जो स्वाँग दिया है, उसीके अनुसार सांगोपांग अभिनय करना हमारा कर्तव्य है। जो आदमी मालिककी रुचिके अनुसार उसका काम नहीं करता, वह नमकहराम है और जो मालिककी सम्पत्तिको अपनी मान लेता है, वह बेईमान है। नट पार्ट करता है, स्टेजपर किसीके साथ पुत्रका-सा, किसीके साथ पिताका-सा, किसीके साथ मित्रका-सा यथायोग्य बर्ताव करता है, परंतु वस्तुतः किसी भी वस्तुको—अपनी पोशाकतकको भी वह अपनी नहीं समझता। इसी प्रकार भगवान्‌का भक्त उनकी नाट्यशालारूप इस दुनियामें उनके संकेतानुसार उन्हींके दिये हुए स्वाँगको लेकर आलस्यरहित हो उन्हींकी शक्तिसे कर्म किया करता है। इसमें वह अभिमान किस बातका करे? वह मालिकका विधान किया हुआ—बताया हुआ अभिनय करता है, न कि अपनी ओरसे कुछ। पार्ट करनेमें कभी चूकता नहीं; क्योंकि इसमें मालिकका खेल बिगड़ता है और अपना कुछ मानता नहीं; क्योंकि वह जानता है कि सब मालिकका है, मेरा कुछ भी नहीं, वह मालिकको ही सबका नियन्त्रण करनेवाला और सर्वत्र व्याप्त देखता है और अपनेको उनका अनन्य सेवक समझता है।

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

५-भक्त किसीसे द्वेष नहीं करता या किसीपर क्रोध नहीं करता। किससे करे? किसपर करे? सारा जगत् तो उसे स्वामीका स्वरूप दीखता है। शिवजी महाराज कहते हैं—

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

भक्त विनय, नम्रता और प्रेमकी मूर्ति होता है।

७-भक्त किसी वस्तुकी कामना नहीं करता। उसे वह वस्तु प्राप्त है, जिसके सामने सब कुछ तुच्छ है, तब वह किसकी कामना करे और क्यों करे? वस्तुतः प्रेममें कोई कामना रहती ही नहीं। प्रेममें देना है, वहाँ लेनेका तो नाम ही नहीं है। यही काम और प्रेमका बड़ा भारी भेद है। काममें प्रेमास्पदके द्वारा अपने सुखकी चाह है और प्रेममें अपने द्वारा प्रेमास्पदको सुखी बनानेकी उत्कट इच्छा है। उसके लिये वही सबसे बड़ा सुख है, जिससे उसके प्रेमास्पदको सुख मिले, चाहे वह अपने लिये कितने ही भयानक कष्टका कारण क्यों न हो। प्रेमास्पदके सुखको देखकर प्रेमीकी भयानक पीड़ा तुरंत दिव्य सुखके रूपमें परिणत हो जाती है। अतएव भगवान्का प्रेमी कभी कामी नहीं होता, वह तो चातककी भाँति मेघरूप भगवान्की ओर सदा एकटक दृष्टिसे निहारा करता है। बादल यदि न बरसे या जलके बदले ओले बरसाये, तो भी वह प्रेमके नेमका पक्का पपीहा उधरसे मुँह नहीं मोड़ता।

रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखि गये अंग।
'तुलसी' चातक प्रेमको, नित नूतन रुचि रंग॥
बरषि परुष पाहन पयद, पंख करे टुक टूक।
'तुलसी' परी न चाहिये चतुर चातकहिं चूक॥

यही दशा भक्तकी है।

फिर वह चाहे भी क्या? जगत्का सारा ऐश्वर्य जिसके ऐश्वर्यका एक कण भी नहीं है, वह सर्वलोकमहेश्वर श्यामसुन्दर उसका प्रियतम स्वामी है, उसकी सेवाको छोड़कर वह क्या चाहे? इसीलिये ललितकिशोरीजीने गाया है—

अष्टसिद्धि नवनिद्धि हमारी मुट्ठीमें हरदम रहतीं।
नहीं जवाहिर सोना चाँदी त्रिभुवनकी संपति चहतीं॥
भावैं ना दुनियाकी बातें दिलवरकी चरचा सहती।
'ललितकिसोरी' पार लगावैं मायाकी सरिता बहती॥

भक्त तो केवल अपने प्रियतम स्वामीकी सेवामें ही रहना चाहता है, वह सेवाको छोड़कर मुक्ति भी नहीं ग्रहण करता। करे भी कैसे? भगवान्के उस अनन्य सेवकके लिये मायाका बन्धन तो है नहीं, जिससे वह मुक्त होना चाहे। अब तो केवल भगवत्-सेवाका बन्धन है, भक्त इस प्यारे बन्धनसे मुक्ति क्यों चाहेगा? श्रीमद्भागवतमें भगवान् कहते हैं—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

मेरी सेवाको छोड़कर मेरे भक्त सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और एकत्व मुक्तियोंको देनेपर भी नहीं लेते हैं।

भक्त जानता है, मेरे प्रभु समस्त ब्रह्माण्डोंके एकमात्र स्वामी हैं, मुक्ति उनके चरणोंकी दासी है। वह कहता है—

अब तो बंध-मोक्षकी इच्छा व्याकुल कभी न करती है।
मुखड़ा ही नित नव बंधन है मुक्ति चरणसे झरती है॥

मुक्तिदायिनी गंगाजी श्रीभगवान्के चरणोंका ही तो जल हैं।

एक समय ब्रह्माजी भगवान्के द्वारपर पहुँचे। भगवान्ने द्वारपालके द्वारा उनसे पुछवाया कि 'आप कौन-से ब्रह्मा हैं?' ब्रह्माको इस बातपर बड़ा आश्चर्य हुआ, वे सोचने लगे—'कहीं ब्रह्मा भी दस-बीस थोड़े ही हैं।' उन्होंने कहा—'जाओ, कह दो, चतुर्मुख ब्रह्मा आये हैं।' भगवान्ने उनको भीतर बुलाया। ब्रह्माजीका कौतूहल शान्त नहीं हुआ। उन्होंने पूछा—'भगवन्! आपने यह कैसे पूछा कि कौन-से ब्रह्मा हैं! क्या मेरे अतिरिक्त और भी कोई ब्रह्मा है?' भगवान् हँसे, उन्होंने विभिन्न ब्रह्माण्डोंके ब्रह्माओंका आवाहन किया। तत्काल वहाँ चारसे लेकर हजार मुँहतकके अनेकों ब्रह्मा आ पहुँचे। भगवान्ने कहा—'देखो, ये सभी ब्रह्मा हैं। अपने-अपने ब्रह्माण्डके ब्रह्मा हैं।' तब ब्रह्माजीका सन्देह दूर हुआ। ऐसे ब्रह्माओंके एकमात्र स्वामी, जिसके

प्राणप्रिय हों, वह भक्त किस वस्तुकी कामना करे।

भक्त तो निष्कामभावसे नित्य-निरन्तर अति प्रेमके साथ उनका चिन्तन ही करता रहता है। तुलसीदासजीने कहा है—

कमिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

भक्त निरन्तर अपने भगवान्‌के लिये कामी और लोभीकी इस दशाको प्राप्त रहता है। वह कैसे उनको भुलाये? और कैसे दूसरे विषयके लिये कामना या लोभ करे?

अतएव भक्त सदा-सर्वदा भगवान्‌के चिन्तनमें ही चित्तको लगाये रखता है। भगवान्‌ने भी गीतामें स्थान-स्थानपर नित्य-निरन्तर चिन्तन करनेकी आज्ञा दी है। आठवें अध्यायमें कहा है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥ ५॥

'जो मनुष्य मृत्युके समय मुझको स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको ही प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है।' इसपर लोग सोच सकते हैं कि फिर जीवनभर भगवान्‌का स्मरण करनेकी क्या आवश्यकता है। मरनेके समय भगवान्‌को याद कर लेंगे। याद करके मरनेपर भगवत्प्राप्तिका वचन भगवान्‌ने दे ही दिया है। इसी भ्रान्त धारणाको दूर करनेके लिये भगवान् ने फिर कहा है—

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥ ६॥

'हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावका स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहा है।'

उत्तम पति प्राप्त करनेका साधनस्वरूप व्रत

एक बार स्वर्गकी अप्सराओंने देवर्षि नारदजीसे पूछा—'देवर्षे! आप ब्रह्माजीके पुत्र हैं। हमें उत्तम पति पानेकी अभिलाषा है। भगवान् नारायण हमारे प्राणपति हो सकें, इसके लिये आप हमलोगोंको कोई व्रत बतानेकी कृपा करें।'

नारदजीने कहा—प्रायः सबके लिये कल्याणदायक नियम यह है कि प्रश्न करनेके पूर्व प्रश्नकर्ता विनयपूर्वक प्रणाम करे, पर तुमलोगोंने इस नियमका पालन नहीं किया, क्योंकि तुम्हें युवावस्थाका गर्व है। फिर भी तुमलोग देवाधिदेव भगवान् विष्णुके नामका कीर्तन करो और उनसे वर माँगो—'प्रभो! आप हमारे स्वामी होनेकी कृपा करें।' इससे तुम्हारा सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होगा—इसमें कोई संशय नहीं है। साथ ही मैं एक व्रत भी बताता हूँ, जिसे करनेसे भगवान् श्रीहरि स्वयं वर देनेके लिये उद्यत हो जाते हैं। चैत्र और वैशाखमासके शुक्लपक्षमें जो द्वादशी तिथि है, उस दिन यह व्रत करना चाहिये। रातमें विधिवत् भगवान् श्रीहरिकी पूजा करे। बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि भगवान्‌की प्रतिमाके ऊपर लाल फूलोंसे एक मण्डप बनवाये, नृत्य, गीत एवं वाद्यके साथ रातमें जागरण करे तथा '**ॐ भवाय नमः**', '**ॐ अनङ्गाय नमः**', '**ॐ कामाय नमः**', '**ॐ सुशास्त्राय नमः**', '**ॐ मन्मथाय नमः**' तथा '**ॐ हरये नमः**' कहकर क्रमशः भगवान्‌के सिर, कटि, भुजा, उदर एवं चरण आदिकी पूजा करे। फिर भगवान्‌को प्रणामकर रात्रि-जागरणकी विधि सम्पन्न करके प्रातःकाल भगवान्‌की वह प्रतिमा वेद-वेदांगके जानकार ब्राह्मणको दान कर दे।

अप्सराओ! इस प्रकार व्रत करनेपर इच्छानुकूल भगवान् विष्णु अवश्य पतिरूपमें तुम्हें प्राप्त होंगे। इसके पश्चात् ईखके पवित्र रस तथा मल्लिका आदिके फूलोंसे उन देवेश्वरकी पूजा करना।

इस प्रकार कहकर देवर्षि नारदजी उसी क्षण वहाँसे चले गये। उन अप्सराओंने व्रतकी विधि सम्पन्न की। फलस्वरूप स्वयं भगवान् श्रीहरि उनपर सन्तुष्ट होकर कृष्णावतारमें उनके पति हुए। [**वराहपुराण अ० ५४**]

दुर्गा-पाठ

[शतसहस्त्रायुतलक्ष चण्डीप्रयोग]

(पं० श्रीहनूमानजी शर्मा)

(१)

सुख-सन्तति और सौभाग्यकी वृद्धि एवं आपत्ति, विघ्न और देशोपद्रवादिकी निवृत्तिके निमित्तसे दुर्गाकी उपासना की जाती है और भगवत्कृपासे उसमें अभूतपूर्व या अद्वितीय सफलता मिलती है। महर्षि मार्कण्डेयजीने भगवतीको शीघ्रातिशीघ्र प्रसन्न करनेके अनुरोधसे अपने 'मार्कण्डेयपुराण' में 'सप्तशती' (स्तोत्र) नामसे दुर्गापाठका संयोजन किया है, जिसका एक-एक श्लोक ही नहीं; प्रत्येक श्लोकका एक-एक अक्षर भी मन्त्र है और उपासक यदि योग्य हो तो उसे आशातीत सफलता मिल सकती है। आपत्तिके अवसरोंमें ब्रह्मादि देवोंने, घननादादि दानवोंने और सुरथादि मानवोंने महामायाके प्रभावसे ही सर्वाभीष्ट प्राप्त किये थे। '**कलौ चण्डीविनायकौ**' के अनुसार वर्तमान समयमें भी अमित संकट टालने, रिपुरोग और राजभयादि मिटाने, स्त्री-पुत्र या सौभाग्यादि प्राप्त करने और विजयश्री उपलब्ध होने आदिके अनेकों कार्य दुर्गापाठके द्वारा ही सफल होते हैं और दुर्गापाठी विद्वान् इसीको महामन्त्र या महौषधि अथवा तत्काल फलदायी महाशक्ति मानते हैं और प्राय: प्रत्येक प्रकारके प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये विशेषकर दुर्गापाठका ही प्रयोग करते हैं। यद्यपि दुर्गापाठकी प्रयोगविधि सामान्यरूपसे एक ही प्रकारकी है और उससे प्राय: सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं तथापि प्रयोजनकी लघुता, महत्ता या कठिनता आदिके अनुसार प्रयोगकी शास्त्रोक्त-विधि भी अनेक प्रकारकी हो जाती है, अत: सर्वसाधारणके हित-निमित्त यहाँ उसका दिग्दर्शन कराया जाता है। यथा—

(२)

(१) देवीकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये तद्गतचित्त होकर यदि सामान्यरूपसे एक पाठ भी प्रतिदिन किया जाय और किसी प्रकारकी वाञ्छा (याञ्चा) या कामना न हो तो भी पाठकके सभी अभीष्ट सिद्ध होते रहते हैं और उसके प्रति भगवतीकी अविच्छिन्न कृपा उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है। (२) प्रयोग यदि सकाम किया जाय और उसमें भी प्रतिदिन केवल एक ही पाठ बन सके तो उसके लिये प्रात:स्नानादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर आसनस्थ सप्तशतीस्तोत्रका दुर्गाके रूपमें गन्धाक्षतादिसे पूजन करके (मन:संकल्पकी पूर्तिके लिये) '**ॐ मार्कण्डेय उवाच**' '**सावर्णि: सूर्यतनयो**'से आरम्भ करके '**सावर्णिर्भविता मनु: ॐ**' पर्यन्त समग्र पाठ करे और महामायाके सामने दोनों हाथ जोड़कर 'क्षमा-प्रार्थना' करे। इस प्रकार प्रतिदिन करता रहे। (३) यदि कार्य कुछ महत्त्वका हो और पाठ प्रतिदिन एक ही किया जाय तो उसमें सर्वप्रथम संकल्प करके 'पञ्चोपचार' (स्नान, गन्ध, पुष्प, धूप और नैवेद्य)-से देवीकी सुवर्णमयी मूर्तिका या चित्रका पूजन करे। फिर रात्रिसूक्तका पाठ करके सप्तशतीका न्यास, ध्यान, नवार्णमन्त्रका न्यास, ध्यान और नवार्णमन्त्रके १०८ जप करे। तदनन्तर शान्तचित्त और एकाग्र मनसे देवीके माहात्म्यका मनमें मनन करता हुआ 'दुर्गापाठ' करे। (पाठ सादा हो या सम्पुटित—चाहे जैसा हो) शुद्ध, सुस्पष्ट और समानोच्चारणसे होना चाहिये '**गीती शीघ्री शिर:कम्पी**' आदि न होना चाहिये। पाठके अनन्तर नवार्णके १०८ जप और करे, तत्पश्चात् उसका न्यास और जपोंका समर्पण करके देवीसूक्तका पाठ और क्षमा-याचना करे। (सप्तशतीका न्यास न करे। यदि पाठ ३ या ५ हो तो अन्तिम पाठके पीछे क्षमा-याचना करे।) यदि आवश्यक हो और अवसर मिले तो कवच और अर्गला आदिका पाठ विशेष कर दिया करे। (४) कदाचित् नवरात्रपर्यन्त पाठ करना अभीष्ट हो तो आरम्भमें गणपति-पूजनादि करनेके अनन्तर घटस्थापन, यववपन और देवीका पूजन करे और फिर उपर्युक्त प्रकारसे पाठ करे। और नवरात्र पूर्ण होनेपर तद्दशांश हवन, तद्दशांश तर्पण, तद्दशांश मार्जन और यथासामर्थ्य ९ ब्राह्मणोंको भोजन कराये। यदि कार्य कुछ अधिक महत्त्वका हो—रिपु, रोग, राजभय, अग्निदाह या चौरादिका भय हो—राष्ट्रभंग, महामारी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि या अन्य किसी भी प्रकारकी संकटापन्न

अवस्था उपस्थित हुई हो अथवा लोकहितकारी व्यापक महोत्सवादिका करना-कराना आवश्यक हो तो ऐसे अवसरोंमें 'शतसहस्त्रायुतादि चण्डी' प्रयोगके द्वारा 'महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती' का आश्रय लेना अतिशय फलदायी होता है। शास्त्रकारोंने—

(३)

'शतचण्डी'के सामान्य और विशेष दो प्रकार निर्दिष्ट किये हैं। सामान्यरूपके प्रयोगमें उपर्युक्त प्रकारके सौ पाठ करनेसे एक शतचण्डी पूर्ण होती है। इसीको यदि तीन ब्राह्मण एकत्र रहकर अर्थात् प्रत्येक प्रतिदिन एक पाठ करे तो ३३+१ दिनमें सम्पूर्ण हो सकती है और यदि एक ही व्यक्ति प्रतिदिन तीन पाठ करे तो उसके द्वारा भी उपर्युक्त (३३+१ दिनकी) अवधिमें समाप्त हो सकती है। इसमें भी दशांशका हवन, तर्पण, मार्जन और ब्राह्मण-भोजन करना आवश्यक होता है। कदाचित् अर्थाभावादिवश हवनादि न बन सके तो दशांशके दूने पाठ अधिक करनेसे प्रयोगकी पूर्ति हो सकती है और यदि विशेष रीतिसे की जाय तो—

(४)

ज्योतिष-शास्त्रोक्त शुभदिन और धर्मशास्त्रोक्त शुभ स्थानमें परम्परासे दुर्गाकी उपासना एवं नित्यप्रति यथा-विधि दुर्गापाठ करनेवाले सात्त्विकी, सन्तोषी, सच्चरित्र, सत्कुलीन, सत्यवक्ता, शास्त्रज्ञाता, अक्रोधी, धैर्यधारी और जितेन्द्रिय दस ब्राह्मणोंका आदरपूर्वक आवाहन करके षोडश-हस्तात्मक वस्त्रादिके ध्वजा, पताका, तोरण, बन्दनवार और वितानादिसे विभूषित रंग-बिरंगे लता-पत्र एवं फल-पुष्पादिसे सुशोभित और जलपूर्ण सुपूजित कलशादिसे संयुक्त 'मण्डप' के मध्यमें दारु (काष्ठ)-मयी अथवा वालुकामयी वेदीके ऊपर यथा-विधि स्थापन किये हुए स्वर्ण, रजत, ताम्र या मृण्मय-निर्मित कलशके ऊपर सिंहारूढ देवीकी सुवर्णनिर्मित मूर्तिका स्थापन करे। उसके समीपके उभय पार्श्वमें मातृका और नवग्रहादिका यथास्थान स्थापन करके सर्वप्रथम गणपति-पूजन, मातृका-पूजन, नान्दीश्राद्ध, पुण्याहवाचन, आचार्यादिका वरण, कलशपूजन, दुर्गा-भगवतीका षोडशोपचार-पूजन और समवयस्क (या दो से आठ वर्षतककी) सत्कुलीन सुस्वरूप दस कन्याओंका पूजन करके आमन्त्रित ब्राह्मणोंसे प्रायोगिक पाठ प्रारम्भ करनेकी प्रार्थना करे।

(५)

एतन्निमित्त उपस्थित हुए दसों ब्राह्मण आरम्भके दिन प्रातःकालीन शौच-स्नान, सन्ध्योपासन, पूजापाठ या जपादिके नित्यकर्मसे निवृत्त होकर शतचण्डीका पूर्वाङ्ग (गणेश-पूजनादि) प्रारम्भ होनेके पहले ही यथास्थान उपस्थित होकर पूर्वाङ्गके कामोंमें सहयोग दें—और आवाहित देवादिका पूजन हो जानेके अनन्तर अपने-अपने आसनोंपर यथास्थान पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठ करके 'प्रधान' (यजमान)-कृत पूर्वसंकल्पकी अर्थ-सिद्धिका संकल्प करके अपनी-अपनी पुस्तकोंका देवीके रूपमें पंचोपचारसे पूजन करके यथाविधि 'दुर्गापाठ' करें और पाठके समाप्त होनेपर **'यदक्षर-[1]पदभ्रष्टं'** **'[2]यन्मात्राविन्दु'** **'यदत्र[3]पाठे'** और **'न मन्त्रं[4] नो यन्त्रं'** से क्षमायाचना करके राजभोगका नैवेद्य अर्पण करें, उपर्युक्त दस कन्याओंको भोजन करायें और तत्पश्चात् दुर्गापाठी एक समय भोजन करें। स्मरण रहे कि भोजनमें उत्तम प्रकारके शुद्ध एवं सात्त्विक पदार्थोंका प्राधान्य रहे। सभी ब्राह्मण रात्रिमें भूमिपर शयनकर ब्रह्मचर्यमें रहें, हृदयमें भगवतीका ध्यान रखें और आत्म-कल्याणकी कामना करें।

(६)

इस प्रकार प्रत्येकका एक-एक पाठ होनेसे पहले दिन उक्त दसों ब्राह्मणोंके द्वारा दस पाठ, दूसरे दिन दो-दो

---

१. यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत्। तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि॥

२. यन्मात्राविन्दुविन्दुद्वियपदपदद्वन्द्ववर्णादिहीनं भक्त्या भक्त्यानुपूर्वं प्रकृतिगुणवशाद् व्यक्तमव्यक्तमम्ब।
मोहादज्ञानतो वा पठितमपठितं साम्प्रतं ते स्तवेऽस्मिन् तत्सर्वं सांगमास्तां भगवति वरदे त्वत्प्रसादात्प्रसीद॥

३. यदत्र पाठे जगदम्बिके मया विसर्गविन्द्वक्षरहीनमीरितम्। तदस्तु सम्पूर्णतमं प्रसादतः सङ्कल्पसिद्धिस्तु सदैव जायताम्॥

४. न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम्॥ (दुर्गोपासना)

पाठ होनेसे बीस पाठ, तीसरे दिन तीन-तीन पाठ होनेसे तीस पाठ और चौथे दिन चार-चार पाठ होनेसे चालीस पाठ होनेपर चार दिनमें सौ पाठ होते हैं और इस प्रकार होनेसे प्रथमारम्भकी एक शतचण्डी समाप्त हो जाती है। यह अवश्य है कि इस प्रकार करनेसे दुर्गापाठियोंको प्रतिदिन उत्तरोत्तर अधिक परिश्रम होता है; परन्तु त्वरापूर्ण कार्यके लिये इस विधानसे ही शीघ्र सिद्धि होती है। यदि इसमें कठिनता प्रतीत हो अथवा दुर्गापाठी इसमें स्वयं असामर्थ्य प्रकट करें तो वे ही दस ब्राह्मण प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति एक-एक पाठ करे तो दस दिनमें या पाँच ब्राह्मण प्रत्येक व्यक्ति एक-एक करें तो बीस दिनमें एक शतचण्डी पूर्ण हो सकती है। स्मरण रहे कि इसमें भी उपर्युक्त हवन-तर्पण-मार्जन और ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। शतचण्डीकी पूर्णाहुतिके निमित्त सौ ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये और मण्डप सोलह हाथका बनाना चाहिये।

(७)

इसी प्रकार राष्ट्रभंगादि सार्वजनिक अनिष्टकारी कारणोंके उपस्थित होने, बलशाली अजेय शत्रुको परास्त करने, देशको ईति-भीत्यादिके कष्टोंसे बचाने अथवा राज्यलाभादिके गौरवपूर्ण पद प्राप्त करने आदिके लिये 'सहस्रचण्डी' करानेसे अतिशय लाभ होता है। शतचण्डीकी अपेक्षा सहस्रचण्डीमें दसगुना काम है, अत: इसके लिये सद्‍गुणसम्पन्न सौ ब्राह्मण नियुक्त करने चाहिये और उनके दस-दसके दस वर्ग बनाकर प्रत्येक वर्गके दस-दस ब्राह्मणोंको यथाविभाग सम्यक् प्रकारसे स्थित करके अनुष्ठानके आरम्भमें सर्वप्रथम गणेशादिका पूजन, ब्राह्मणोंका वरण, घटादिका स्थापन, भगवती दुर्गादेवीका षोडशोपचारादि पूजन और सहस्रचण्डीके प्रस्तुत अनुष्ठानका भक्ति, श्रद्धा, शान्ति और शास्त्रोक्त विधिके साथ आरम्भ करना चाहिये। यद्यपि सहस्रचण्डीमें शतचण्डीसे सभी कार्य दसगुने होते हैं और शतचण्डीके समान पाठ-क्रम रहनेसे चार दिनमें एक सहस्रचण्डी हो सकती है। तथापि प्रत्येक ब्राह्मण प्रतिदिन एक-एक पाठ करें तो दस दिनमें सहस्रचण्डी, सौ दिनमें अयुतचण्डी और सहस्र दिनमें लक्षचण्डी सम्पन्न हो सकती है। अथवा उपर्युक्त दस-दस ब्राह्मणोंके प्रत्येक वर्गके द्वारा चार-चार दिनमें एक-एक 'शतचण्डी' हो तो प्रथमारम्भके चार दिनमें एक 'सहस्रचण्डी', चालीस दिनमें एक 'अयुतचण्डी' और चार सौ दिन (एक वर्ष ४० दिन)-में एक 'लक्षचण्डी' सम्पन्न हो सकती है। यदि एक समयमें सद्‍गुणसंयुक्त सौ ब्राह्मणोंका एकत्र होना असम्भव हो तो एक वर्गके दस ब्राह्मणोंसे चार दिनमें 'शतचण्डी' चालीस दिन (१ महीना १० दिन)-में 'सहस्रचण्डी' चार सौ दिन (१३ महीना १०दिन)-में 'अयुतचण्डी' और चार हजार दिन (११ वर्ष १ महीना १० दिन)-में 'लक्षचण्डी' हो सकती है। (सुयोग्य ब्राह्मण अधिक मिल जायँ तो प्रतिदिन जितने अधिक पाठ होंगे, उसी अनुपातसे उतनेही कम दिनोंमें ये अनुष्ठान हो सकते हैं।)

(८)

ऐसे महान् फलदायी अनुष्ठानोंके सम्पन्न होनेमें अनेक प्रकारकी विघ्न-बाधा या असुविधा हो जाया करती है और उनके होनेसे कर्ताका मन:संकल्प अधूरा रह जाता है। अतएव अयुतचण्डी या लक्षचण्डी-जैसे बहुसंख्यक सुयोग्य ब्राह्मणोंके अभावके कारण दीर्घकालमें पूर्ण होनेवाले अनुष्ठानोंमें आरम्भसे समाप्तिपर्यन्तके सभी आयोजन एक ही बारमें एकत्र करनेकी अपेक्षा उपर्युक्त क्रमसे पूर्ण होनेवाली एक-एक शतचण्डी या सहस्रचण्डीके उपयोगी आयोजन उपस्थित करके एक-एकका आरम्भ और समाप्ति करते हुए—अवकाशप्राप्त अवधिपर्यन्तके समयमें 'शतसहस्रायुत लक्षचण्डी' में जिस किसीतक जो भी सम्पन्न हो जाय, उसीको पूर्ण मानकर आरम्भकी समाप्ति करते रहें तो उसमें करने-कराने या सहयोग देनेवालों आदि सभीका कल्याण है। अस्तु!

(९)

दुर्गापाठके कामनायुक्त अनुष्ठानोंमें विशेषकर सम्पुटित पाठ किया करते हैं और शास्त्रकारोंने विभिन्न प्रकारकी कामनाओंके लिये सम्पुट भी पृथक्-पृथक् प्रकारके निश्चित कर दिये हैं, जो मुद्रित दुर्गापाठमें प्रयोग-विधिके रूपमें संयुक्त हैं। उनमें '**करोतु सा**[१] **न:**' '**शरणागतदीनार्त**[२]',

१. करोतु सा न: शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापद:।

२. शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे । सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

और '**सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो**[१]' जैसे सम्पुट सात्त्विकी होनेपर भी आशार्थियोंके सर्वाभीष्ट सफल करनेमें सबल और व्यापक हैं। साथ ही '**सर्वाबाधाप्रशमनं**[२]' जैसे मन्त्र उत्कट भी हैं, जिनसे महाबली अजेय शत्रु भी परास्त हो जाते हैं। विशेषता यह है कि उक्त मन्त्रके चतुर्थ चरणमें रोग या शत्रुके नामका योग करके विलोम पाठ किया जाय तो महीनोंके मनोरथ दिनोंमें ही सिद्ध हो जाते हैं। उत्कट इच्छा या परमानुरागसे किये जानेवाले अनुष्ठानोंमें आरम्भहीसे यह इच्छा प्रबल हो जाती है कि—'अपने कार्यकी सिद्धि होगी या नहीं?'—'अथवा किस रूपमें सफलता मिलेगी?' इसका ज्ञान होनेके लिये सभी शास्त्रकारोंने कई साधन बतलाये हैं, उनमें एक यह भी है कि '**दुर्गे देवि नमस्तुभ्यम्**[३]' इस मन्त्रके दस हजार जप करे और फिर जब कभी जिस-किसी कामनाके सिद्ध होने या न होनेका ज्ञान करनेकी कामना हो तो रात्रिके समय शुद्धासनपर उत्तराभिमुख बैठ करके एक हजार जप करे और मालाको मस्तकके नीचे रखकर वहीं सो जाय। ऐसा करनेसे निद्रा आनेपर सब कामोंको सिद्ध करनेवाली महाशक्ति स्वप्नमें देववाणी (संस्कृतके द्वारा) कुछ कहें तो उस कथनको तत्काल ही कागजपर अंकित कर लेना चाहिये और अपने अभीष्टकी सिद्धि या असिद्धिको जान लेना चाहिये।

बोध-कथा—

भवितव्यता

(**श्रीकन्हैयासिंहजी 'बिशेन'**)

देवताओंकी महासभा आहूत की गयी थी। सभी लोग अपने-अपने वाहनोंसे पधार रहे थे। वाहन सभाकक्षके बाहर अवस्थित थे। क्रमशः गरुड़, हंस, मयूर, उलूक और कपोत आदि आ चुके थे। इतनेमें यमराजका पदार्पण हुआ और वे अन्दर प्रवेश करने लगे। सहसा उनकी दृष्टि कपोतपर पड़ी और वे अन्दर आसनपर आसीन हो गये। एकाएक यमराजको देखकर कपोतको भयावह लगा और वह घबड़ाया हुआ बेचैन हो उठा। उसकी इस स्थितिको देखकर गरुड़ने पूछा—मित्र, तुम भयभीत लग रहे हो। अचानक इतने घबराये क्यों लग रहे हो?

कपोतने कहा—यमराजको सामने उपस्थित देखकर मेरा कलेजा काँप रहा है। उनकी लाल-लाल आँखें मैं भूल नहीं पा रहा हूँ और मुझे लगता है कि मेरी मौत अभी और आज ही हो जायगी। इसी भयवश काँप रहा हूँ।

यह सुनकर गरुड़जी हँसे और कहा—तुम इसकी चिन्ता न करो, आओ मेरी पीठपर सवार हो जाओ और निमिषमात्रमें मैं तुम्हें साठ हजार योजन दूर मैनाक पर्वतकी चोटीपर पहुँचा दूँगा और किसीको पता भी नहीं चलेगा।

गरुड़जीने उसे पहुँचाकर पुनः अपना आसन ग्रहण कर लिया। सभाका समापन हुआ। सर्वप्रथम यमराजजी निकले और उनके नेत्र कपोतको खोजने लगे। इसे देखकर गरुड़जीने कहा—महाराज, क्या देख रहे हैं? उन्होंने कहा—यहाँ कबूतर बैठा था, कहाँ गया? दिखायी नहीं पड़ रहा है। इसपर गरुड़जीने कहा—महाराज, उसे तो मैं बहुत दूर पर्वतकी चोटीपर छोड़ आया हूँ। यमराजजीने हँसते हुए कहा—गरुड़जी! आपने तो मेरी चिन्ताको दूर कर दिया, जिसके लिये आप बधाईके पात्र हैं; क्योंकि कबूतरकी मृत्यु बहुत दूर पर्वत-शिखरपर नियत है। यह यहाँसे वहाँ तुरन्त कैसे पहुँचेगा? क्या नियतिके विधि-विधान मिथ्या हो जायँगे—यही मेरी चिन्ता थी। परन्तु आपने उसे नियत स्थानपर पहुँचाकर नियतिकी व्यवस्था और प्रकृतिके कार्योंमें सहयोग किया। इसके लिये मैं आपका आभारी हूँ।

कहा गया है—

तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलइ सहाइ।
आपुनु आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ लै जाइ॥

---

१. सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्विताः। मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः॥
२. सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि। एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्॥
३. दुर्गे देवि नमस्तुभ्यं सर्वकामार्थसाधिके। मम सिद्धिमसिद्धिं वा स्वप्ने सर्वं प्रदर्शय॥

साधकोंके प्रति—

अहंकार कैसे मिटे ?

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

मैं शरीर हूँ, शरीर मेरा है—यह मान्यता रखना ही खास भूल है। मूल भूल है कि 'मैं शरीर हूँ'। आप इसपर जरा विचार करो—शरीर मिला है। मिली हुई चीज अपनी नहीं होती। अपनी चीज सदैव अपनी ही रहती है, कभी बिछुड़ती नहीं, पहलेसे अन्ततक अपनी ही रहेगी और जो मिली है, वह छूट जाती है, सदैव साथ नहीं रहती। ऐसी मिली हुई वस्तु 'मेरी' कैसे हुई?

स्वयं पहले था और स्वयं पीछे रहेगा। बीचमें शरीर मिला तो यह स्वयं शरीर कैसे हुआ?

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥

(गीता १३।१)

'**इदंता**' से दीखनेवाले शरीरको क्षेत्र कहा है। इसको जाननेवालेको इसी श्लोकमें 'क्षेत्रज्ञ' कहा है। इस वर्णनसे यह स्पष्ट है कि क्षेत्रज्ञ और क्षेत्र दो चीजें हैं। जैसे, मैं खम्भेको जानता हूँ, तो खम्भा जाननेमें आनेवाली चीज हुई और मैं खम्भेको जाननेवाला हुआ। जाननेवाला, जाननेमें आनेवाली वस्तुसे भिन्न होता है—यह नियम है। मैं शरीरको जानता हूँ, इससे स्पष्ट हुआ कि शरीर मुझसे अलग है। हम यही कहते हैं—यह मेरा पेट है, यह मेरा पैर है, यह मेरी गर्दन है, यह मेरा मस्तिष्क है, ये मेरी इन्द्रियाँ हैं, यह मेरा मन है, यह मेरी बुद्धि है। अपनेसे अलगको ही 'मेरा' कहा जाता है। अतः ये सबसे अलग हैं। वास्तवमें विचारा जाय तो 'अहम्' यानी 'मैं' पन भी 'इदम्' ही है; क्योंकि जिस प्रकाशमें संसार दिखायी देता है; उसी प्रकाशमें 'अहम्' भी दिखायी देता है। जिस प्रकाशमें शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण इदंतासे दिखायी देते हैं, उसी सामान्य प्रकाशमें अहं भी इदंतासे दिखायी देता है। दीखनेवाला अपना स्वरूप कैसे हुआ? वास्तवमें 'अहम्' भी अपना स्वरूप नहीं है।

मैं शरीर नहीं हूँ—इस बातको दृढ़तासे मान लो। मैं न कभी शरीर था, न कभी शरीर हो सकता हूँ, न शरीर रहूँगा और न अभी वर्तमानमें मैं शरीर हूँ। मैं इससे बिलकुल अलग हूँ। इसकी पहचान क्या है कि मैं शरीरसे अलग हूँ? यदि शरीरसे मेरी एकता होती तो चाहे तो मरनेपर शरीर मेरे साथ चलता अथवा शरीरके साथ मैं भी रहता। पर न तो मैं शरीरके साथ रहता हूँ और न शरीर मेरे साथ जाता है। इस परिस्थितिमें शरीरके साथ मेरी एकता कैसे हुई? अर्थात् मैं शरीर कैसे हुआ?

मकान और मैं अलग-अलग हूँ। मकानसे मैं बाहर चला जाता हूँ तो मकान मेरे साथ नहीं जाता। मकान यहीं रहता है, मैं बाहर चला जाता हूँ तो इससे सिद्ध हुआ कि मैं मकानके साथ नहीं रहता, यानी मैं और मकान—ये दो हैं, एक नहीं। इसी प्रकार शरीर और मैं—ये दो हैं एक नहीं। ऐसा ठीक बोध होनेपर अहंकार मिट जाता है और अहंकार मिटनेपर मैं और शरीर—ये दोनों अलग-अलग दिखायी देते हैं।

मैं शरीर हूँ, शरीर मेरा है और शरीर मेरे लिये है—ये तीन खास भूलें हैं। न तो मैं शरीर हूँ, न शरीर मेरा ही है और न शरीर मेरे लिये ही है। मेरे लिये शरीर हो ही नहीं सकता; क्योंकि मैं नित्य-निरन्तर रहनेवाला और यह नित्य-निरन्तर बदलनेवाला है। यह शरीर बदल रहा है, जा रहा है, वियुक्त हो रहा है प्रतिक्षण; यह मेरे लिये कैसे हो सकता है? कोई एक भी क्षण ऐसा नहीं है, जिस क्षणमें यह शरीर वियुक्त न होता हो।

मनुष्य मानता है कि जब शरीर मर जाता है, तब शरीरका वियोग होता है; इसलिये जन्मसे मृत्युतक हमारा रहा। यह बहुत स्थूल बुद्धिसे मान्यता है। बारीकीसे देखा जाय तो शरीर जो सौ वर्षतक रहनेवाला है, वह एक वर्षका बालक हो गया तो अब ९९ वर्ष ही रहनेवाला रहा। दृष्टि होती है कि बालक बढ़ रहा है, यह बात बिलकुल गलत है। बालक तो प्रतिक्षण मर रहा है। अपने भी सोचते हैं कि हम बढ़ रहे हैं, हम जी रहे हैं। यह बिलकुल झूठी बात है। सच्ची बात तो यह है कि हम मर रहे हैं, प्रतिक्षण मर रहे हैं! हम मानते

हैं कि मरनेके बाद शरीरसे वियोग हो जाता है, पर वास्तवमें वियोग प्रतिक्षण हो रहा है, तो हरदम वियुक्त होनेवाला शरीर हमारे लिये कैसे हो सकता है? हमारा कैसे हो सकता है? और हम उसके कैसे हो सकते हैं?

अब विचार करें कि क्या मेरा पूरा आधिपत्य शरीरपर चलता है? अगर चलता है, तो इसको हम बीमार न होने दें, कमजोर न होने दें और कम-से-कम मरने तो मत ही दें। पर हमारा आधिपत्य इसपर नहीं चलता। फिर शरीर हमारा कैसे हुआ?

बालकपनमें जो मैं था, वही अब भी हूँ। अपना होनापन निरन्तर वैसा-का-वैसा दीखता है, पर शरीर बदलता है। बदलनेवाला शरीर 'मैं' कैसे हुआ? मैं नित्य-निरन्तर रहनेवाला, शरीर नित्य-निरन्तर ही बदलनेवाला। वह शरीर मेरे लिये कैसे हुआ? मेरे लिये तो वही हो सकता है, जो सदैव मेरे साथ रहे। और मेरे काम आ जाय। पर यह मेरे साथ रहता नहीं, तो यह मेरे लिये कैसे हुआ?

शरीरकी संसारके साथ एकता है।—

'छिति जल पावक गगन समीरा।'—जिन पाँच तत्त्वोंसे यह संसार बना है, उन्हीं पाँच तत्त्वोंसे यह शरीर बना है। शरीर और संसारकी एक जाति है। यह शरीर संसारका एक अंग है। शरीर हमको मिला है संसारकी सेवाके लिये, तो अपने लिये शरीर कैसे हुआ? शरीर हमको क्या निहाल करेगा? हम शरीरको अपना तथा अपने लिये न मानकर संसारका मानकर संसारकी सेवामें लगा दें। इस प्रकार संसारकी वस्तु संसारके काममें लगा दें तो इससे हमारा सम्बन्ध-विच्छेद हो जायगा, इससे माना हुआ सम्बन्ध टूट जायगा अर्थात् शरीरसे 'मैं-पन' मिट जायगा।

आप एक शंका कर सकते हैं कि इस शरीरसे हम भगवन्नामजप करते हैं, इससे ध्यान लगाते हैं, चिन्तन करते हैं, इससे सेवा करते हैं तो यह शरीर किसके काम आया? यानी हमारे ही तो काम आया? हम जप, ध्यान करते हैं, तो भगवान्‌की प्राप्ति होगी, भगवान्‌के दर्शन होंगे; तो इस प्रकार शरीर हमारे काम आया। आप थोड़ा गहरा विचार करें—वास्तवमें शरीर आपके काम नहीं आया। शरीरसे मेरापन मिटा है। भजन-ध्यान करनेसे अन्तःकरण शुद्ध हो गया। शुद्ध अन्तःकरणमें यह ज्ञान जाग्रत् हुआ कि 'मैं शरीर नहीं हूँ तथा शरीर मेरा नहीं है।' आप ज्यों-के-त्यों हैं। आपके शरीर क्या काम आया? शरीरकी शुद्धि हुई। शुद्धि होनेसे मैंपन, मेरापन मिटता है। मैंपन और मेरापन यह अशुद्धि है। (गीता (५।११)-में श्रीभगवान्‌ने कहा है कि योगीलोग अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये कर्म करते हैं। **'केवलैः'** पद श्लोकमें आया है। **'केवलः'** पद इन्द्रिय, मन, बुद्धि, काया सबके साथ लगेगा। **'केवलेन कायेन, केवलेन मनसा, केवलया बुद्ध्या, केवलैः इन्द्रियैः।'** केवल कहनेका मतलब इनके साथ अपना सम्बन्ध न मानना है। इनके साथ अपनापन मानना ही अशुद्धि है। रामायणमें ***'ममता मल जरि जाइ'*** ऐसा आया है। ममतारूपी मल है।

हम बहुत वर्षोंसे जप-ध्यान करते हैं और मन शुद्ध नहीं होता, क्या कारण है? उसमें मेरापन है, यह मान्यता रखते हैं। यह मान्यता पकड़ी हुई है। मनको शुद्ध करना चाहते हो, पर मेरापन छोड़ते नहीं। मेरापन रखना ही अपवित्रता है। जप-ध्यान अपने लिये मानते हो! ऐसा मानते हो कि जप-ध्यान करें तो हमारा कल्याण होगा। पर वास्तवमें नाम-जपसे, कीर्तनसे, भजन-ध्यानसे अन्तःकरण शुद्ध होगा, तब यह बात समझमें आ जायगी कि ये 'मैं' नहीं, ये 'मेरे' नहीं हैं।

शरीर मेरा नहीं है, शरीर मैं नहीं हूँ, फिर आपके लिये शरीर कैसे हुआ? आप तो शरीर-मन-बुद्धिसे सदैव अलग ही हैं। अपने लिये मानते रहनेसे सम्बन्ध जुड़ता है। परमात्माका हम चिन्तन करते हैं तो मन, बुद्धिसे ही चिन्तन करेंगे। मन-बुद्धि प्रकृतिके हैं कि आपके? तो भगवान्‌के चिन्तनमें आप पराधीन हो गये। प्रकृति 'पर' है, आप स्वयं 'स्व' हो। 'पर'का सहारा लेना पड़ा, तो आप पराधीन हुए। ध्यान करो तो जड़का सहारा लेना पड़ेगा। समाधि लगाओ तो जड़का सहारा लेना पड़ेगा। पर जड़के द्वारा चेतनकी प्राप्ति होती नहीं। चेतनकी प्राप्ति जड़के त्यागसे होती है। जड़ताके त्यागसे चिन्मयतामें हमारी स्थिति होगी। जड़ताका आश्रय लेंगे,

जड़ताकी आवश्यकता समझेंगे तो जड़ चीजोंसे, शरीर आदिसे सम्बन्ध-विच्छेद कैसे करेंगे? जब इनका त्याग करनेसे ही कल्याण होगा, तो ये हमारे क्या काम आये? इनका त्याग ही हमारे काम आता है। वह आज ही कर दें तो कितना अच्छा होगा।

ठीक तरहसे समझें इस बातको कि शरीर हमारे लिये कैसे हुआ? इसलिये भजन-ध्यान करो, दान-पुण्य करो, सेवा करो, सब कुछ करो शरीरसे, पर अपने लिये नहीं; तो ये सब चीजें कल्याण करनेवाली हो जायँगी। कब? जब इस भावसे करोगे कि ये सब मेरे नहीं हैं, मेरे लिये नहीं हो सकती हैं। प्रश्न उठता है कि फिर करते क्यों हो? दूसरोंसे हमने लिया है—इसलिये। शरीर भी दूसरोंसे मिला है, अन्न-जल दूसरोंसे मिलता है, हवा भी हमारे जीनेके लिये मिलती है। राह, सड़क औरोंसे मिली है, छाया, मकान सब चीजें औरोंसे मिली हैं। मिली हुई चीज जिनसे मिली है, उनकी सेवामें लगा देना है कर्जा उतारनेके लिये। आगे कर्जा लेना नहीं है। अपना मानकर अपने लिये चाहते रहनेसे कर्जा चढ़ता रहेगा। इसलिये नया कर्जा करना नहीं है।

शरीर हमारे काम आ जाय, यह इच्छा रहेगी, तो यह आपके कैसे काम आयेगा? आप चेतन हैं, जड़ शरीर आपके कैसे काम आयेगा? तो हम क्या करें? जड़तासे माना हुआ सम्बन्ध है। उस सम्बन्धको छुड़ानेके लिये सेवा करें, भजन-ध्यान करें, जप करें, समाधि लगायें; परंतु अपने लिये नहीं। अपने लिये मानते रहनेसे व्यक्तित्व बना रहता है। श्रुतियोंमें **'ब्रह्मणे स्वाहा इदं न मम'** आता है। **'इदं न मम'** पद देनेका तात्पर्य है कि यह हवि हमारे लिये नहीं है अर्थात् यज्ञके साथ अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर देना। श्रीगीताजीमें भी **'दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥'** (१७।२०) इस श्लोकमें **'अनुपकारिणे'** पद देकर अपने लिये किंचिन्मात्र भी न चाहनेका लक्ष्य कराया है।

इस श्लोकपर जरा विचार करें। आपको व्याकरणकी एक आश्चर्यकी बात बताता हूँ। **'अनुपकारिणे'** पदमें चतुर्थी विभक्ति दी है और **'देशे काले च पात्रे'**में सप्तमी विभक्ति दी है। इसका क्या तात्पर्य है? **'पात्रे च'** में तो कम-से-कम सप्तमी नहीं कहनी चाहिये थी। **'पात्राय'** होना चाहिये, सप्तमी कैसे हो गयी वहाँ? इसका तात्पर्य क्या है, पूरा तो भगवान् जानें और व्यासजी महाराज जानें, अपनेको पता नहीं। हम तो कोई विद्वान् हैं नहीं, परंतु हमारी धारणामें **'देशे काले च पात्रे च'** कहनेमें **'देशे काले प्राप्ते सति'** अर्थात् देश, काल और पात्रके प्राप्त होनेपर—**'अनुपकारिणे दीयते'** है। **'अनुपकारिणे'**का अर्थ यह है कि (जिसने हमारा) न तो उपकार किया है, न उपकार करता है और न हमें उससे उपकारकी आशा है। उपकारीको दिया जाय तो वह सात्त्विक दान नहीं होगा, वह दान राजस होगा। **'यत्तु प्रत्युपकारार्थम्'''** आदि कहा है, जो राजस हुआ; क्योंकि दानसे सम्बन्ध जोड़ लिया; रागात्मक सम्बन्ध हो गया और **'रजो रागात्मकं विद्धि'** होता है। राग क्या है? सम्बन्ध जोड़ना है। अतः उपकारकी आशा रखकर देना सात्त्विक दान नहीं है। वह बाँधनेवाला दान है। यद्यपि भगवान्ने गीता (१७।२०)-में वर्णित दानको सात्त्विक दान कहा है, परंतु वास्तवमें यह दान नहीं, यह त्याग है; क्योंकि यह देश, काल और पात्रके प्राप्त होनेपर, अपना सम्बन्ध न रखते हुए दिया जाता है।

ऐसे ही जप-ध्यानका सम्बन्ध भी हमारे साथ न रहे। सेवाका भी सम्बन्ध हमारे साथ न रखें। यदि सेवा करके हम समझते हैं कि हमने बड़ा काम किया तो गलती करते हैं। हमारे पास जो शक्ति है, यह समष्टिकी शक्ति है; समष्टिसे अधिक या अलग कोई योग्यता या शक्ति आपके पास है क्या? विद्या, बुद्धि, योग्यता कुछ भी परिस्थिति जो आपको प्राप्त है, वह आपको समष्टिसे मिली है। समष्टिकी चीज समष्टिकी सेवामें लगा दी तो क्या अहसान किया? उसीकी चीज उसीके काममें लगा देना ईमानदारी है। अपने लिये लगाते हो तो अहंकार आयेगा। मैंपन है, तो मेरापन आयेगा, मेरे लिये आयेगा।

न तो यह मैं हूँ, न मेरा है, न मेरे लिये है। 'यह' करके जिसको कहते हैं, वह 'मैं' कैसे हुआ? 'यह' 'मैं'

नहीं होता। 'मैं' होता है, वह 'यह' नहीं होता। शरीर यह है, मन यह है, बुद्धि यह है, प्राण यह है। मैंपन यह है। तो ये सब हमारा स्वरूप कैसे हुए? न तो मैं हूँ और न ये मेरे हैं। खूब सोचो, इसे समझनेके लिये।

आपने किसीको पढ़ाया। किसीको आपने शिष्य बनाया। गायत्री-मन्त्र दिया आपने, तो वह आपका शिष्य हो गया और आप उसके गुरुजी हो गये। गुरु और शिष्य दो हुए। अब तीसरा दोनोंका आपसका सम्बन्ध हुआ। यह सम्बन्ध एक अलग सत्ता हो गया। यह सम्बन्ध ही एक आफत हो गया। यह सम्बन्ध ही जन्म-मरणका कारण है। अतः जड़तासे सम्बन्ध-विच्छेद जल्दी-से-जल्दी कर लेना चाहिये। जड़तासे सम्बन्ध-विच्छेद होना ही अहंकारका मिटना है।

नारायण! नारायण! नारायण!

बोध-कथा—

चार मित्र

(डॉ० श्रीमती पुष्पारानीजी गर्ग)

चार मित्र थे। एक ब्राह्मण था, एक क्षत्रिय, एक वैश्य और एक शूद्र। चारोंमें इतना प्रेम था, जैसे एक प्राण, चार तन हों। चारों सदा साथ रहते, परदेश भी जाते तो एक साथ।

ब्राह्मण सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञाता था। क्षत्रिय शस्त्र-विद्यामें पूर्ण पारंगत था। वैश्यको व्यापारकी एक-एक बारीक कला ज्ञात थी। शूद्रमें सभीके प्रति सहज सेवा-भाव था। न किसीमें अहंकार था, न हीनभाव।

एक बार वे चारों घूमते-घूमते दूसरे नगरमें पहुँच गये। वहाँका राजा सन्तानहीन था। सन्तानकी आशा करते-करते वह वृद्ध हो चला। उसे अब किसी योग्य उत्तराधिकारीकी तलाश थी। राजाके सिंहासनके सामने एक सुन्दर-सी मिट्टीकी प्रतिमा रखी रहती। राजा स्वयं कलाकार था। उसने स्वयं ही गढ़कर यह प्रतिमा तैयार की थी। वह प्रतिमा सदा उसके सामने रहती और वह अक्सर सोचता 'काश! इस प्रतिमामें कोई प्राण फूँक देता तो यह सजीव हो उठती।'

वे चारों मित्र एक दिन घूमते-घूमते उस राजाके दरबारमें जा पहुँचे। चारों राजाको झुककर प्रणाम कर रहे थे कि उनकी दृष्टि उस प्रतिमापर पड़ी। प्रतिमाका अनूठा सौन्दर्य उन्हें आकर्षित करने लगा। चारों विचार करने लगे 'क्या ही अच्छा होता कि यह प्रतिमा सजीव हो उठती।' तभी शूद्रने अपनी इच्छाशक्तिसे उसके पैरोंमें प्राणशक्ति आरोपित की। वैश्यने उसके हृदयप्रदेशमें चेतनाका संचार किया। क्षत्रियने अपनी सम्पूर्ण क्षात्र-शक्तिकी सहायतासे उसकी बाहुओंमें प्राण फूँके। अब ब्राह्मणने अपने ब्रह्मज्ञानके बलपर उसके मस्तिष्कमें प्राणोंका प्रवेश कराया। इतनेमें ही वह मिट्टीकी प्रतिमा जो अबतक निर्जीव खड़ी थी, एक सुन्दर सर्वगुण-सम्पन्न नवयुवकके रूपमें सजीव होकर सामने खड़ी हो गयी। सहसा यह चमत्कार देख राजा अपार हर्षसे झूम उठा। उसका ध्यान उन चारों मित्रोंपर गया। उसने उन्हें अपने पास बुलाकर कहा, 'आप चारोंमेंसे जिसने भी इस प्रतिमामें प्राण डाले हैं, मैं उसे अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता हूँ।' ब्राह्मण विनम्रतासे बोला, 'महाराज! हम चारोंमें कोई अलग नहीं है, हम चार शरीर एक प्राण हैं, हम एक-दूसरेके बिना अधूरे हैं।' राजाने कहा, 'फिर आप ही निर्णय करके बतायें कि मैं किसे अपना उत्तराधिकारी घोषित करूँ?'

चारों मित्र कहने लगे, 'महाराज! हममेंसे किसीको भी राज्यका मोह नहीं है, आप हम चारोंकी प्रतिनिधिरूप इस प्रतिमाको ही अपना उत्तराधिकारी बना लें, हम चारोंने समानरूपसे प्रयत्न करके इस प्रतिमाको सजीव बनाया है। इस प्रतिमाके रूपमें हम चारों आपके सामने उपस्थित रहेंगे, जबतक आपके राज्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र प्रेम एवं सद्भावसे रहेंगे, तबतक यह प्रतिमा सजीव रहेगी।' राजाने प्रसन्न होकर अपने उत्तराधिकारीका राज्याभिषेक किया। तभी सबने देखा कि उन चारों मित्रोंके नेत्रोंसे प्रकाशकी किरणें निकलीं और नये शासकके नेत्रोंमें समा गयीं।

होलीपर विशेष—

'लला फिर आइयो खेलन होरी'

(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)

भयंकर सर्दी, ठिठुरन और गगन-मण्डलसे झर-झर बहते ओसके शीतल कणोंको अपने आँचलमें समेटे माघमास विदा हुआ। रंग-रँगीले फाल्गुनमासका आगमन हुआ। वनप्रदेशमें मयूर नृत्य करने लगे, कदम्ब वृक्षकी डालपर बैठी कोयलके कण्ठसे सुरीले गीत सुनायी देने लगे। यमुनाके तटपर मृगोंके झुण्ड कुलाँचे भरने लगे। शीतल मन्द सुगन्धित वायुके झकोरे मानव-मनको आनन्दित करने लगे। पुष्प-वाटिकाओंमें खिले रंग-बिरंगे और सुगन्धित पुष्पोंपर भ्रमरोंके समूह गुंजारकर अपना हर्ष व्यक्त करने लगे। चारों ओर हर्ष और उल्लासकी बयार बहने लगी।

ऐसे मनमोहक वातावरणमें ब्रजप्रदेशमें होलीकी मादकता सबसे रंगीन महोत्सवके रूपमें चहुँ ओर छा जाती है। इस उत्सवका शुभारम्भ होता है, जब सम्पूर्ण प्रदेशमें कहीं ब्रजबालाएँ, कहीं ग्वाल-बाल और कहीं गोप-ग्वाले नाचते-गाते होलीके संगीतमय वातावरणमें मादकता और मस्ती भर देते हैं। इस समय सारे ब्रजवासी लोकमर्यादा, पारम्परिक रीति-रिवाजों तथा अपनी प्राचीन संस्कृतिको सँजोकर मस्तीभरे संसारमें विचरण करने लगते हैं। आनन्दरूपी अथाह सागरकी उत्ताल तरंगें जाति, धर्म और अमीरी-गरीबीके सारे बन्धन तोड़कर समाजको प्रेमके रंगोंसे सराबोरकर एकाकार कर देती हैं। कान्हाकी लीला-स्थली ब्रजमण्डलमें इस उत्सवका हर रंग निराला होता है।

बसन्त ऋतुके आगमनके साथ ही भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधारानी दिव्य स्वरूप धारणकर आज भी ब्रजमें ग्वाल-बाल और सखियोंके संग होलीका आनन्द लूटने पधारते हैं। श्रीराधारानी जब होली खेलती हैं, सारा आकाश गुलालके रंगोंसे ढक जाता है और श्रीकृष्णकी पिचकारीसे छूटे केसरके रंगसे धरतीमाता अपना शृंगार करती हैं। नन्दग्राम, बरसाना, गोकुल, महावन, गोवर्धन, फालैन, दाऊजी, मथुरा और वृन्दावन आदि ब्रजक्षेत्रमें श्रीराधारानीके संग होली खेलकर श्रीकृष्ण अपने भक्तोंको आनन्दित करते हैं।

आइये, श्रीराधा-कृष्णकी होली-लीलाके दर्शन करने श्रीवृन्दावन चलते हैं। इस लीलाका सजीव वर्णन करते हुए सूरदासजीने लिखा है—

वृन्दावन श्याम मची होरी।
बाजत ताल मृदंग झांझ ढप, बरसत रंग उड़त गोरी॥
कित ते आये कुँवर कन्हैया, कित तैं आई राधा गोरी।
नन्दग्राम ते आये कन्हैया, बरसाने ते राधा गोरी॥
कौनके हाथ कनक पिचकारी, कौनके हाथ अबीरकी झोरी।
कृष्णाके हाथ कनक पिचकारी, राधाके हाथ अबीरकी झोरी॥
अबीर गुलालकी धूम मची है, फेंकत हैं भरि भरि कै झोरी।
सूरदास छवि देख मगन भये, राधे श्याम जुगल जोरी॥

श्रीवृन्दावनमें होलिकोत्सव प्रारम्भ हो गया, अनेक प्रकारके वाद्यवृन्द मुखरित हो उठे। नन्दग्रामसे श्रीकृष्ण अपनी स्वर्णकी पिचकारीमें केसर रंग भरकर तथा बरसानासे श्रीराधारानी अपनी झोलीमें अबीर-गुलाल भरकर वृन्दावनमें प्रवेश करते हैं। जैसे ही दोनोंका आमना-सामना होता है, कान्हाने अपनी पिचकारीके रंगसे श्रीराधारानीको सराबोर कर दिया और प्रियाजीने अपने दोनों हाथोंसे गुलाल-अबीरकी उनके ऊपर वर्षाकर उन्हें लाल रंगसे रँग दिया। श्रीराधा-माधवकी इस दिव्य लीलाके दर्शनकर सारी सृष्टि भाव-विभोर हो उठी।

इस पर्वपर ब्रजबालाएँ लोक-लाज त्यागकर अपने कान्हाके साथ होली खेलनेको आतुर हो उठती हैं। ऐसी ही एक मनोहारी लीलाका सजीव वर्णन करते हुए श्रीकृष्णभक्त रसखानने लिखा है—

रसखानि गुलालकी धूंधरमें, ब्रजबालनकी दुति यों दमकै।
मनो सावन माँझ ललाई के माँझ, चहुँ दिसि तें चपला चमकै॥
मिलि खेलत फाग बढ्यौ अनुराग, सुराग सनी सुख की रमकै।
कर कुंकुम लै करि कंजमुखी, प्रिय के दृग लावन कौं धमकै॥

इस प्रकार श्रीराधारानी अपने मोहनके मुखकी ओर गुलाल फेंककर अतिशय आनन्दका अनुभव कर रही हैं। ऐसे ही उत्साहके साथ सम्पूर्ण ब्रजमण्डलमें होलीकी

धूम मची है। श्रीकृष्णको जहाँ भी सखियाँ मिल जाती हैं, वे उन्हें जबरदस्ती पकड़कर नखसे शिखतक रंगोंसे भिंगोकर ही छोड़ते हैं।

श्रीकृष्णकी ऐसी जोरा-जोरीसे तंग आकर वे सखियाँ श्रीराधारानीके पास जाकर अपनी व्यथा सुनाकर उनसे बदला लेनेका आग्रह करती हैं। श्रीराधाजी तो स्वयं ही इस अवसरकी प्रतीक्षामें थीं। अपनी सखियोंको आश्वस्त करते हुए कहने लगीं, तुम सब भरपूर मात्रामें रंग और गुलालकी व्यवस्था करो और मैं श्रीकृष्णको बरसाना बुलानेका प्रबन्ध करती हूँ। श्रीराधारानीने अपने पिता श्रीवृषभानुजीके माध्यमसे श्रीकृष्णको बरसाना आकर होली खेलनेका निमन्त्रण भिजवा दिया। बरसानाका निमन्त्रण पाकर श्रीकृष्ण अपने बाल सखाओंके संग जा पहुँचे बरसानाकी तलहटीमें पीली पोखरपर। वहाँ पहुँच सबने स्नान किया और श्रीराधा और सखियोंके संग होली खेलनेका सुअवसर जान अपना शृंगार करने लगे।

कान्हाने शीशपर पीली पगड़ी, भालपर चन्दनका तिलक, कानोंमें कुण्डल, गलेमें वैजयन्ती माला, हाथमें कनककी पिचकारी, पैरोंमें घुंघरू बाँधे तथा सखाओंके साथ मुखसे सिंघा-शंख बजवाते और हाथोंसे लाठी पटकाते जा पहुँचे श्रीराधारानीके महलकी पौरमें, उधर श्रीराधा रानी और उनकी सखियाँ सोलहों शृंगारसे युक्त वहाँ तैयार खड़ी थीं। श्रीराधाका अभूतपूर्व शृंगार देख श्रीकृष्ण उनपर मोहित हो उठे। होते भी क्यों न, उनके माथेपर बिन्दी, कानोंमें मोतियोंके झुमके, वक्ष:स्थलपर मोतियोंका हार, अँगुलियोंमें स्वर्णकी अँगूठियाँ, कमरमें स्वर्णकी करधनी, पैरोंमें चाँदीकी पायजेब, उनमें जड़े सुन्दर घुँघरू, नयनोंमें काजलकी पतली-पतली रेखाएँ देख मोहनका उनकी छविपर मोहित हो जाना स्वाभाविक ही तो है।

श्रीराधाने नयनोंके संकेतसे कान्हाको रँगीली गलीमें आनेका निमन्त्रण दे दिया। तुरंत ही नाचते-गाते धूम मचाते कान्हा जा पहुँचे रँगीली गलीमें। दोनोंका जैसे ही आमना-सामना हुआ, श्रीराधाकी पायलके घुंघरू मुखरित हो उठे, फिर कान्हाकी वंशी कैसे मौन रहती, उसके मधुर स्वर और श्रीराधाके पायलकी झंकार दोनोंने मिलकर होलीकी मस्तीमें चार चाँद लगा दिये। दोनों पक्षोंमें रंगोंका खेल प्रारम्भ हो गया।

लाल गुलाल सों लीन्हीं मुठी भर, लालके भालकी ओर चलाई।
या दृग मूँदै इन्हैं चितये, इन भेंटि इतै वृषभानु की जाई॥

× × ×

दयौ आज्ञा वृषभानु कुमारी, आय गई सिगरी ब्रजनारी।
सबन मिल पकड़े कृष्ण मुरारी, सखन्ह पर हल्ला खूब मचायौ है॥
पकड़ो री ब्रजनार कन्हैया, होली खेलन आयौ है।
पीताम्बर मुरली लई छिनाय, श्याम को गोपी वेष बनाय॥
कंचुकी कटि लहँगा पहिराय, किशोरी मंद मंद मुस्काय।
लला को घूँघट मार नचायौ है॥

श्रीराधारानीका आदेश मिलते ही सारी सखियोंने श्रीकृष्णको चारों ओरसे घेरकर पकड़ लिया। इनके हाथसे मुरली और पीताम्बर छीनकर गोपी वेष धारण करा दिया, इनके मुखड़ेको घूँघटसे ढँककर नचाने लगी हैं। आज ये गोपियाँ अपने साथ की गयी जोराजोरी और छेड़छाड़का बदला लेनेपर उतारू हैं। कन्हैया बार-बार उन गोपियोंसे छोड़ देनेका आग्रह करते हैं, परंतु उन्होंने तो अपनी गतिविधि और तेज कर दी।

एक सखी उन्हें खुले आँगनमें ले गयी, वहाँ किसीने दुलारा, किसीने पुचकारा, कोई गालोंपर चिकोटी भरने लगी, कोई उनके गालोंपर रोली लगाने लगी, किसीने माथेपर काजलकी रेखा खींच दी, कोई उसके घुँघराले बालोंमें हाथ फेरने लगी। आज श्रीराधारानी और उनकी सखियाँ होलीके इस आनन्दको जी भरकर भोगना चाहती हैं, इसी उद्देश्य से,

फाग के भीर अभीरन में, गहि गोविन्द लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की पद्माकर, ऊपर नाई अबीर की झोरी॥
छीनि पितम्बर कम्मर से, सु बिदा दई मीड़ि कपोलनि रोरी।
नैन नचाइ कही मुसकाय, लला फिर आइयो खेलन होरी॥

इस प्रकार गोपियोंने अपनी समस्त मनोकामनाएँ पूर्णकर श्रीकृष्णको ससम्मान अपने गाँवकी ओर यह कहते हुए विदा कर दिया कि ***'लला फिर आइयो खेलन होरी'।***

परिवारका स्वरूप

(ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)

जिस प्रकार अच्छी फसल पानेके लिये हमको अच्छी भूमि, अच्छा बीज, अच्छी जलवायु तथा उचित समयके साथ शुभ-संकल्पवान् समर्पित-श्रमाराधक व्यक्तियोंकी आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार अच्छे सज्जन व्यक्तियोंको पानेके लिये हमें अच्छे संस्कारवान् माता-पिता, अच्छे वातावरणवाले परिवार, अच्छे संस्कार देनेवाले शिक्षक, अच्छे लोगोंका समाज तथा अच्छा विशुद्ध सद्विचार, सदाचारयुक्त वातावरण आवश्यक होगा। किसी महापुरुषने बहुत अच्छी बात कही—यदि आप एक दशककी योजनामें सफलता पाना चाहते हैं तो अच्छी फसलें लगाओ। यदि आप सौ वर्ष (शताब्दी)-के लिये कोई योजना चाहते हैं तो आप श्रेष्ठ छाया तथा फल देनेवाले महावृक्ष लगाओ और यदि आप सहस्राब्दियोंको प्रभावित करनेके लिये कोई योजना बनाना चाहते हैं, तो आप अच्छे संस्कारवाले मनुष्योंसे सजे परिवारोंका सुन्दर समाज बनानेपर विचार कीजिये। अच्छे बालक ही अच्छे नागरिक बनेंगे तथा समाज और राष्ट्रको उन्नतिके शिखरपर ले जा सकेंगे।

जन्मसे पूर्व—इसकी शुरुआत तबसे करनी होगी जब पिताका तेज माताके गर्भमें स्थापित होनेका मुहूर्त होगा। भगवत्स्मरणपूर्वक इस गर्भाधान-संस्कारको भी हम वासनापूर्तिका साधन न मानकर उपासनाका अंग बना सकते हैं। समाज-सेवाके महायज्ञमें अपनी पवित्र आहुति दे सकते हैं। ये विषय समझनेके लिये हमें अपनी समझको श्रद्धासिक्त एवं उदार बनाना होगा। इतिहासकी घटनाओंको सही परिप्रेक्ष्यमें लेते हुए वैज्ञानिक तथा व्यवहारिक दृष्टिकोण विकसित करना होगा। प्रसिद्धि है कि अभिमन्युने चक्रव्यूहका भेदन करना माता सुभद्राके गर्भकी पाठशालामें ही सीखा था। योगीन्द्रवृन्द-वन्दित पादारविन्द ज्ञानादित्य श्रीअष्टावक्रजी महाराजको भी समग्र वेदराशिका बोध मातृगर्भकी पाठशालामें ही प्राप्त हुआ था। भक्तराज प्रह्लादजी महाराजने तो स्वयं स्वीकार किया कि जब मैं माताके गर्भमें था, तब श्रीनारदजी महाराजने मेरी माताको दिव्य भक्ति-ज्ञानका उपदेश दिया था, माँ तो स्त्री होनेके कारण तथा समयाधिक्यके कारण भूल गयी, परंतु मैं नहीं भूला—

तत्तु कालस्य दीर्घत्वात् स्त्रीत्वान्मातुस्तिरोदधे।
ऋषिणानुगृहीतं मां नाधुनाप्यजहात् स्मृतिः॥

(श्रीमद्भा० ७।७।१६)

मातृगर्भकी शिक्षा-संस्कारके विषयमें श्रीशुकदेवजी स्वयं परम प्रमाण हैं। अधिक क्या कहें, शिवाजीके विषयमें सुना जाता है कि माता जीजाबाईजी उनको विविध पुराणोंकी कथा सुनाती थीं तथा भारतीय संस्कृतिकी रक्षा, गोरक्षा, हिन्दुत्व-रक्षा, देव-प्रतिष्ठाकी स्थापनाहेतु उस अजन्मे शिशुको प्रबोधित करती थीं, जिसका परिणाम आपके सम्मुख है। शिवाने कभी अपनी माँका वचन नहीं टाला तथा तुलजा भवानी और माता जीजाबाईजीमें अभेद मानकर सदा उनके चरण-वन्दन करके ही दिवसका आरम्भ किया। असंख्य उदाहरण हैं, जिनके द्वारा यह विषय समझा जा सकता है, अतः जब बालक माताके गर्भमें हो तब माताको पौष्टिक सात्त्विक पवित्र आहार, सात्त्विक पवित्र वातावरण मिले, जिससे माता प्रसन्न रह सके; क्योंकि उस समय माता रोती है, दुखी रहती है तो बालकका विकास प्रभावित होता है। माँ अधिक न सोये, अधिक न खाये, लड़े नहीं, बुरा न सोचे, भगवत्स्मरण करे।

जन्मके उपरान्त—आप ये मत समझना कि शिशु छोटा है, वह सुनता नहीं, समझता नहीं, जानता नहीं। आप ही सोचो जो शिशु गर्भवासमें सबकुछ जान सकता है, वह जन्मके उपरान्त क्यों नहीं जानेगा? हाँ! वह जानकर, सुनकर, देखकर, समझकर भी स्पष्ट प्रतिक्रिया नहीं कर पाता और यदि अपने ढंगसे वह संकेत करता भी है तो हम नहीं जान पाते, परंतु छोटे-से-छोटा बालक भी अनुकूलता पाकर मुसकराता है, किलकारी भरता है, हाथ-पैर हिलाता है, नजरें झुकाता है अथवा बहुत गौरसे एकटक आपको निहारता रहता है। यह वह

समय है, जब बालकका चित्त आँखोंके पवित्र कैमरेसे आपकी फोटो खींच रहा है। प्रतिकूलता पानेपर वह रोता है। अनजाना व्यक्ति पाकर वह असहज होता है। हे सुभद्र जनो! समझो, यह जीवन-निर्माणका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समय है। इस समयमें बालककी उपेक्षा न करो। जैसे-जैसे बालक बड़ा होता जाय, उसको अच्छे संस्कार दिये जायँ। माता-पिता, भाई-बहन, दादा-दादी, ताऊ-ताई आदि सभी स्वजन-परिजन ऐसा पारिवारिक वातावरण दें कि जिससे वह कुसंगकी अँधियारी रातमें राह भटकनेपर भी विचलित न हो सके। अपना सत्पथ न छोड़ सके। बालकको अपने धर्म, कुल, जाति, राष्ट्रकी समझ हो, उसे गौरव हो। वह हीन भावनाका शिकार न बने। बालकोंको स्पष्ट बताया जाय कि—

१- क्या करें, क्या न करें।

२- क्यों करें, क्यों न करें।

३- लाभ क्या है, हानि क्या है।

४- कब करें, कब न करें।

५- कैसे करें, कैसे न करें।

६- कहाँ करें, कहाँ न करें।

७- उचित क्या है, अनुचित क्या है।

८- किसका संग करें, किसका न करें।

९- मित्र कैसा हो, कैसे लोगोंकी मित्रता हानिकारक है।

१०- हमारे जीवनका आदर्श कौन होना चाहिये?

जैसे—भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, आचार्य शंकर, महारानी लक्ष्मीबाई, मीराबाई हमारे आदर्श होने चाहिये, न कि अन्य कोई।

सच्चरित्रताका, सदाचारका, सद्व्यवहारका भाव बच्चोंमें आये, वे समाजको प्रकाश देनेलायक बन सकें—ऐसा प्रयास करें। हमारे बालक कायर-भीरु न बनें। उनके अन्दर सत्य-न्याय-सिद्धान्तके प्रति सम्मानका भाव हो। उन्हें बताया जाय कि हमारे पूर्वज चोटी-जनेऊकी रक्षाके लिये गरदन कटाना स्वीकार करते थे, परन्तु स्वधर्म नहीं त्यागते थे। जोरावर सिंह तथा फतेह सिंह, गुरु गोविन्द सिंहके दो पुत्र, ५-७ वर्षके बालक मृत्युको गले लगाते हैं, दीवारमें चुनवा दिये जाते हैं, परंतु स्वधर्म नहीं त्यागते। पाँच वर्षका ध्रुव वनमें जाकर अभयत्वके साथ तप करके परमात्माको पा लेता है। पाँच वर्षका नचिकेता यमराजके घर पहुँचकर तीन दिनतक भूखा-प्यासा रहता है और मृत्युके देवता यमसे मुलाकात करके ब्रह्मविद्या पा लेता है। तब फिर आज हम क्यों नहीं पा सकते? 'वीर बालक', 'भक्त बालक' आदि पुस्तकें उनको पढ़नेके लिये दें। परिणाम चाहे जो हो, हमें प्रयास करने ही चाहिये। घरकी दीवारोंपर चित्र हों, परंतु केवल उनके ही जिनका चरित्र वन्दनीय हो, जिनके जीवन-आलोकसे समाजको दिशा प्राप्त हुई हो।

आजके समयमें सर्वाधिक आवश्यकता है कि माता-पिता, घरके बड़े लोगोंके बीच असामंजस्य, वैचारिक मतभेद, असहमति हो तो कोई बड़ी बात नहीं है, परंतु वह मतभेद मनभेद न बने। असहमति कलहका रूप धारण न कर ले। हर समय की 'तू-तू', 'मैं-मैं' से बच्चोंको विरासतमें विषाद, विवाद, बिखराव, बेचैनी तथा आक्रोश मिलता है, जिससे उनके अन्दर विचित्र असहिष्णुताभरी चिड़चिड़ाहट घर कर लेती है, फलतः बालक गलत संगतिमें पड़ जाता है; दुर्व्यसन, दुर्गुण तथा दुर्जनोंके संगसे जीवनको विनाशके पथपर डाल लेता है। जो असहमतिके विषय हों, उनको शान्तिसे, ठंडे दिमागसे मिल-बैठकर निपटा लेना चाहिये।

देखो भाई! ये सच्चाई है, विवादकी जड़में तुच्छातितुच्छ कारण मिलेगा 'अहंकार' या 'मैं'। बस इसी 'मैं' से आक्रान्त व्यक्ति 'जर जोरू जमीन' का बहाना करके बातका बतंगड़ बना लेता है, जबकि सभी ये बात जानते हैं कि संसारका एक कण भी साथ जानेवाला है नहीं। इसीलिये भाई! जिन बातोंमें हम एक नहीं हो पाते, उनको किनारे करके घरमें, संस्थामें शान्ति बनाये रखें। संसारभरकी सम्पत्ति भी जाती हो तो जाय, परंतु मनकी शान्ति न जाने पाये। मनकी शान्ति अनमोल है। मनको शान्ति है तो नदीतटपर,

जंगलमें, किसी झोपड़ीका जीवन भी आनन्द दे सकता है और यदि मनको चैन नहीं है तो भव्य भवन, आज्ञाकारी सन्तान, सेवापरायण सेवक, मनोनुकूल जीवनसाथी, सामाजिक प्रतिष्ठा, उन्नतिशील व्यापार, सुन्दर स्वस्थ शरीर तथा अपराजेय व्यक्तित्व भी किसी कामका नहीं है। आपने कभी सोचा रावणके विषयमें? नहीं न! रावणके पास दुनियाकी दृष्टिसे कोई कमी नहीं है। सब कुछ भरा-पूरा है। सब दृष्टिसे रावणका मुकाबला कोई कर नहीं सकता। ज्ञान में, विज्ञानमें, वीरतामें, धीरतामें, युद्धमें, बुद्धिमें; जिसकी प्रसन्नता पानेको लोकपाल-दिक्पाल तरसते हों, जिसके क्रोधसे चराचर काँप जाते हों, रहनेके लिये विशुद्ध स्वर्णका घर ही नहीं महादुर्ग हो। ***एक लख पूत, सवा लख नाती*** हों, परंतु वह रावण भी जब कभी अपने अन्दर झाँकता है तो काँप जाता है, अन्दरके खोखलेपनको देखकर। रोने लगता है, भगवान् शिवसे प्रार्थना करता है—हे महादेव! मेरी जिन्दगी तबाह हो गयी है, वह दिन कब आयेगा, जब मैं गंगाके किनारे पेड़ों और झाड़ियोंके झुरमुटमें अकेला बैठा-बैठा अपने अहंकारको, अपनी पापिनी बुद्धिको त्यागकर अश्रुप्रवाहके साथ आपका 'शिव-शिव' नाम-जप करता रहूँगा। हे शिव! अब इस बाहरी आडम्बरसे, बनावटी संसारकी बनावटी प्रतिष्ठासे, बनावटी रिश्तोंके बनावटी प्रेमसे, मिथ्या जय-जयकारसे अब जी ऊब गया है। हे देव! सब कुछ ले लो, मेरा वही निश्छल निष्कपट बचपन लौटा दो, जब मैं केवल और केवल आपका ही स्मरण करता था। आपकी चाहतमें जिसने शिर कटानेमें संकोच नहीं किया, वह रावण आज संसारमें उलझ गया है।

कदा निलिम्प-निर्झरी-निकुंज-कोटरे वसन्
विमुक्त-दुर्मतिः सदा शिरःस्थमञ्जलिं वहन्।
विलोल-लोल-लोचनो ललाम-भाललग्नकः
शिवेति मन्त्रमुच्चरन् कदा सुखी भवाम्यहम्॥

(शिवताण्डवस्तोत्रम्)

अस्तु! हमारे घरका वातावरण ऐसा हो, जहाँ शान्ति, सादगी, सदाचार, सद्विचार, सद्भावके साथ-साथ जीवनको समाजहितके लिये, राष्ट्रहितके लिये सदुपयोगी बनानेका उत्साहपूर्ण भाव बच्चोंके मन-मस्तिष्कमें प्रतिष्ठित हो। व्यर्थकी दिखावट, सजावट तथा बनावटमें, तड़क-भड़कमें बालक न फँसें।

सादा जीवन उच्च विचार।
सादा भोजन पवित्र आचार।
सादा वस्त्र उज्ज्वल चरित्र।
मधुर सत्य सरल वाणी, निष्कपट व्यवहार।

बच्चोंकी जिज्ञासाको दबाया न जाय, अपितु उसका उचित समाधान करके उनको सत्यकी खोजके लिये प्रेरित किया जाय।

दृढ़ इच्छाशक्ति

(श्रीरामकिशोरजी)

एक बालक जन्मके समय अत्यन्त कमजोर था। बादमें वह पोलियोका शिकार हो गया। डॉक्टरोंने उसके माता-पिताको बताया कि उसका इलाज दवाओंसे नहीं, बल्कि उसकी अपनी इच्छाओंसे हो सकेगा। बालकको धीरे-धीरे खुद भी इसका एहसास हुआ। वह दूसरे बच्चोंको जब मैदानमें भागते देखता, तो खुद भी दौड़नेकी कोशिश करता। उसके माता-पिताने उसके लिये यही किया कि वे रोज उसे पार्कमें ले जाते। धीरे-धीरे बालकके शरीरकी गाँठ खुलने लगी। एक दिन वह सचमुच दूसरे बच्चोंकी तरह दौड़ने-कूदने लगा। मगर उस बालककी दौड़ यहीं खत्म होनेवाली नहीं थी।

१६ जुलाई, १९००को अपनी इच्छाशक्तिका कमाल दिखाते हुए ओलंपिकमें ऊँची कूद, लम्बी कूद और तिहरी कूद—तीनों प्रतिस्पर्धाओंमें उस बालकने स्वर्ण पदक प्राप्त किये। ऐसी लगन और प्रबल इच्छाशक्तिकी मिसाल कायम करनेवाले वह धावक, अमेरिकाके 'रे एवरी' थे। उनका जीवन इस बातकी प्रेरणा देता है कि दृढ़ इच्छाशक्तिके बलपर मनुष्य अपनी शारीरिक बाधाओंपर विजय प्राप्त कर लेता है।

असंग रहो और भगवान्‌को अपना मानो

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

मेरे आत्मस्वरूप साधक महानुभाव! संसारसे सुखकी आशाके रहते त्याग नहीं होता, ममताके रहते विकार नहीं मिटते और कामनाओंके रहते शान्ति नहीं मिलती। चाहरहित हुए बिना योगकी सिद्धि नहीं मिलती, असंगताके बिना बोध नहीं हो सकता और आत्मीयताके बिना प्रेमकी प्राप्ति नहीं हो सकती। यह सब बातें ध्रुवसत्य हैं। या कहो कि प्रभुका ऐसा कुछ विधान ही है। इसलिये संसारसे सुखकी आशा मत करो। प्राप्तकी ममता और अप्राप्तकी कामना मत करो। निष्काम-भावसे सभी कर्म करो।

सब प्रकारकी स्वीकृतियोंसे असंग रहो और भगवान्‌को अपना मानो। फिर तुम जो कुछ भी साधन करोगे, उसमें सफलता अवश्य मिलेगी। परंतु जो साधन करो वह रुचिकर हो, सन्देहरहित हो और सामर्थ्यके बाहर न हो। कारण, रुचिकर होनेसे मन और सन्देह-रहित होनेसे बुद्धि साधनमें लग जाती है। और सामर्थ्यके भीतर होनेसे उकताहट तथा थकावट नहीं होती। इनके अतिरिक्त सफलता न मिलनेमें और कोई कारण नहीं है।

जानकारी, मान्यता और जो हम करते हैं, उसमें सफलता मिलना ही साधनकी सिद्धि है और सिद्धि कुछ नहीं। परंतु आज क्या होता है कि हम संसारकी वास्तविकताको जानते हुए भी उसकी आशाका त्याग नहीं कर पाते। हम भगवान्‌को मानते हैं, उनसे प्रेम करना चाहते हैं, परंतु नहीं कर पाते। हम ब्रह्म हैं अथवा आत्मा हैं, ऐसा मानते हैं, परंतु बोध नहीं होता। हम निर्दोष होना चाहते हैं, परंतु नहीं हो पाते।

हम भगवान्‌का चिन्तन-ध्यान करते हैं, परंतु चित्तमें शान्ति नहीं मिलती। हम धर्मको जानते और मानते हैं, परंतु आचरणमें नहीं ला पाते। हमने योगकी क्रिया करते हुए जीवनका बड़ा भाग बिता दिया, परंतु प्रवृत्तियोंका निरोध नहीं कर पाये। यह तो है आजके साधकोंकी दशा। अब बताओ, क्या ऐसी जानकारी, क्रिया और मान्यतासे हमारा काम चल सकेगा? कहना होगा, नहीं चलेगा।

जानकारी, मान्यता और क्रियाओंका जबतक जीवनपर प्रभाव नहीं होगा, तबतक तो उन्हें वास्तविक भी नहीं कह सकते। फिर उनसे हमें लक्ष्यकी प्राप्ति हो ही कैसे सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती। तो बताओ, त्याग और प्यार करना भी किसीसे सीखना पड़ता है क्या? जिसको असार और दुःखरूप जान लेंगे, उसका त्याग और जिसे अपना तथा सुखरूप मान लेंगे, उससे प्यार तो स्वतः होना चाहिये।

हम संसारको असत्य और दुःखद जानकर भी उसका त्याग और भगवान्‌को अपना तथा सुखधाम मानकर भी उनसे प्रेम नहीं कर पाते। इसका एकमात्र कारण यही है कि हम संसारसे सुखकी आशा करते रहते हैं एवं उस सर्व-समर्थ प्रभुको सरल हृदयसे अपना नहीं मानते।

याद रहे, और कुछ भी अपना है और परमात्मा भी अपना है—ये दोनों बातें एक साथ नहीं होतीं। जबतक हम और कुछ भी अपना मानते हैं, तबतक तो मुखसे कहते हुए भी हमने सच्चे हृदयसे भगवान्‌को अपना नहीं माना। यही इसकी पहचान है।

अतएव यदि इसी जन्ममें सफलता चाहते हो तो उपर्युक्त बातें जीवनमें उतारो, सफलता अवश्य मिलेगी। यह बात परम सत्य है। ॐ आनन्द!

वर्तमान युगमें ज्योतिषका महत्त्व

(पं० श्रीसंजय शिवशंकरजी दवे, ज्योतिषाचार्य)

हमारे जीवनमें ग्रहोंका तारतम्य

पृथ्वीपर जो भी बीमारी पैदा होती है, जो भी महामारी पैदा होती है, वह सब कुछ नक्षत्रोंसे सम्बन्धित है, अब तो इसके वैज्ञानिक आधार भी मिल गये हैं,जब भी सूर्यपर ११ वर्ष पश्चात् आणविक विस्फोट होता है, तभी पृथ्वीपर युद्ध और क्रान्तियाँ बढ़ जाती हैं, जब सूर्यको ग्रहण लगता है तो पक्षी कई घण्टों पूर्व ही साधु-संन्यासीकी भाँति मौन हो जाते हैं, बन्दर वृक्ष छोड़कर जमीनपर आ जाते हैं और शान्ति व्याप्त हो जाती है।

पाइथागोरसने पाया कि नक्षत्रोंकी एक विशेष ध्वनि अपनी गतिसे पैदा होती है, जो जन्म लेनेवाले जातकके प्राथमिक संवेदनशील, सरलतम चित्तपर अंकित हो जाती है। जब मनुष्य अपने उस नक्षत्रसे तालमेल बना लेता है तो स्वस्थ होता है और जब उसका तालमेल उस मूल संगीतसे छूट जाता है तो वह अस्वस्थ हो जाता है। व्यक्तिको अपनी जन्म-कुण्डलीके अनुरूप ही रंगोंका चुनाव, मंत्र, साधना, भोजन और देव-पूजन करना चाहिये, ताकि ग्रहोंका तारतम्य बना रहे।

सम्पूर्ण जगत् एक आर्गेनिक यूनिटी है, पूरा ब्रह्माण्ड एक शरीर है, सब संयुक्त हैं, इसलिये दूरस्थित तारा जब स्थिति बदलता है तो हमारे हृदयकी गतिको भी बदल देता है, रक्तकी धाराएँ भी बदल जाती हैं।

ज्योतिष एवं ग्रहोंका सही विश्लेषण होना जरूरी है, मेरा मानना है कि हमारे हाथमें ज्योतिषके अधूरे सूत्र हैं। अब मात्र घण्टे-दो घण्टेमें अगर मैं जातककी सटीक भविष्यवाणी कर दूँ तो शायद यह मेरे लिये असम्भव ही होगा।

पृथ्वीपर सारे ग्रह-नक्षत्रोंकी अनन्त किरणें टकराती हैं, शायद ही कोई ऐसी चीज है, जो उससे अप्रभावित हो। चाँदसे समुद्र प्रभावित होता है। समुद्रमें पानी और नमकका जो अनुपात है, वही अनुपात हमारे शरीरमें भी स्थित है, अगर चाँदसे समुद्रका जल प्रभावित हो जाता है तो मनुष्यपर उसका प्रभाव नहीं होगा, यह तो असम्भव है। इसी कारण वाहन खरीदते समय, भवनमें प्रवेशके समय, विवाह आदिमें ग्रहोंकी अनुकूल स्थिति देखी जाती है, ताकि शुभ कार्योंके प्रारम्भमें आपका मन प्रसन्न और शान्त रहे, विषय-स्थितिसे आपका तारतम्य स्थापित हो सके।

पूर्णिमाके निकट आते-आते सारी दुनियामें कई लोगोंका मानसिक सन्तुलन विचलित हो जाता है तथा अमावस्याके दिन यह प्रभाव कम होता है। अगर हम मिलेट्रीके सेनापति, योद्धा, जनरलकी कुण्डलीका अध्ययन करें तो पायेंगे कि अधिकांशत: उनकी कुण्डलीमें मंगलका प्रभाव भारी रहेगा, वहीं धार्मिक एवं शान्तिवादीमें गुरुका प्रभाव प्रबल देखनेको मिलता है।

ज्योतिष विद्या एक बहुत वैज्ञानिक चिन्तन है, कुण्डलीमें ग्रहों एवं नक्षत्रोंके अध्ययनसे भविष्यके गर्तमें छुपी स्थितिको जानकर हम उचित धारामें शान्ति-समृद्धिको प्राप्त कर सकते हैं, अन्यथा विपरीत आयामोंमें हम तनाव, चिन्ता, अशान्ति ही प्राप्त करेंगे और यही स्थिति आज अधिकांश लोगोंके साथ देखनेको मिल रही है।

वर्तमानमें चल रही ज्योतिषशास्त्रके प्रति लोगोंकी भ्रान्ति और तर्क-वितर्कको परे हटाते हुए हमें इसके वास्तविक रहस्योंकी ओर अग्रसर होना होगा, जिससे हम अपने जीवनको सुव्यवस्थित और शान्तिमय बना सकें, यही समयकी माँग है।

जीवनमें ज्योतिषीय महत्त्व

मानव-जीवनमें जब भी संकटोंका दौर आता है तो उसकी सहज वृत्ति उसे ज्योतिषी, पण्डित, गुरु, इष्टकी ओर अग्रसर कर देती है, ऐसी विकट स्थितिमें मात्र मनुष्यद्वारा किया गया पुण्य-अर्जन और आत्मबल ही उसका सच्चा हितैषी होता है।

ग्रहोंकी विपरीत स्थितिमें भौतिक संसाधन किसी भी रूपमें हमारे पूर्ण सहयोगी नहीं बन सकते। इसलिये समय रहते ही हमें पुण्य-अर्जन कर लेना चाहिये।

जिस दिन हमारा मन विचलित और अशान्त रहता

है, ऐसी स्थितिमें शायद हममें उसका विशेष कारण जाननेकी जिज्ञासा रही होगी। ज्योतिषके अध्ययनके अन्तर्गत ग्रहोंके अनुरूप व्यक्तिविशेषके लिये रंग, भोजन, आराध्य देव और मन्त्रोंका वर्णन बतलाया जाता है। कफ, पित्त, वातकी प्रवृत्ति तथा विपरीत भोजन, ग्रहोंके विपरीत किया गया रंगोंका चुनाव निश्चित ही हमें अशान्त और विचलित कर देता है।

साधारणतया अगर हम अध्ययनद्वारा देखें तो पायेंगे कि अमुक खाद्य पदार्थ एवं अमुक रंगके वस्त्रोंसे मन विचलित रहता है। ज्योतिष-विज्ञानमें ग्रहके अनुरूप पालनीय नियमोंके द्वारा हम ग्रहोंके विपरीत प्रभावको कम कर सकते हैं, जिस प्रकार हम किसी रोगके उपचारके लिये आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक, नेचरोपैथीका सहारा लेते हैं, उसी प्रकार ज्योतिष विज्ञानमें तन्त्र यानी साधना, पूजन, अनुष्ठान, सम्बन्धित इष्ट मन्त्र, ग्रहोंके मन्त्रका जप, ग्रहके अनुकूल प्रभावहेतु रत्न, रुद्राक्ष धारण करना यह व्यक्तिविशेषके ऊपर निर्भर करता है कि वह किस पद्धतिको प्राथमिकता देता है। तीनों स्थितियाँ समान ऊर्जा और बल प्रदान करनेमें सहायक होती हैं।

सबसे विशेष और महत्त्वपूर्ण बात यह होती है कि जातकके लिये दर्शाये गये ज्योतिषीय नियमोंको अति गोपनीय रखना आवश्यक होता है; क्योंकि अन्यत्र व्यक्तिद्वारा दिये गये तर्कसे मन विचलित होता है। साथ-ही-साथ इसमें पूर्ण श्रद्धा और विश्वासका होना भी अति आवश्यक है।

व्यक्तिके जीवनमें उसके स्वभावद्वारा भी जन्म-कुण्डलीके ग्रहोंकी स्थितिका अध्ययन किया जाता है; क्योंकि ग्रहोंके अनुरूप ही उसके जीवनकी स्थितियोंका निर्धारण होता है। उदाहरणार्थ जिस व्यक्तिको क्रोध ज्यादा आता है, उसे लाल रंगके वस्त्र धारण नहीं करना चाहिये तथा प्रतिदिन शुद्ध चन्दन तिलक लगाना चाहिये। इसके विपरीत अति शान्त और सरल जातकको लाल मेरून रंगके वस्त्र शुभप्रद रहते हैं। विचलित मन तथा अमर्यादित जातकको श्रीरामचन्द्रजीकी आराधना तथा अति सहज व्यक्तिको भगवान् कृष्णजीकी आराधना शुभ फलदायक होती है।

ज्योतिष-विज्ञान आपकी परिस्थितिको परिवर्तित नहीं करता, यह तो आपको परिस्थितियोंके अनुरूप संघर्षोंहेतु वास्तविक ज्ञानका बोध कराता है। परिस्थितियोंका परिवर्तन या बदलाव तो जातक स्वयं अपनी साधना और पुण्य-संग्रहद्वारा ही कर सकता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें गुण-मिलानका औचित्य

आवश्यकता आविष्कारकी जननी है, बिना किसी कारणके किसी भी चीजका जन्म नहीं होता, किसी भी स्थितिके पीछे एक नियत कारण जरूर विद्यमान होता है। ऐसी कौन-सी परिस्थिति और हालात थे, जिसके चलते आज ज्योतिषका क्षेत्र इतना व्यापक और विस्तृतरूपमें फैला। पूर्वमें ज्योतिषको इतनी प्राथमिकता क्यों नहीं दी गयी—यह प्रश्न मस्तिष्कमें बार-बार आता है, परन्तु अगर हम इस गहनतम विषयसे अनभिज्ञ हैं तो यह स्वीकार करना होगा कि हम ऊपरी परतको खोज रहे हैं। हमने गहराईमें मूल सत्यको जाना ही नहीं, समझा ही नहीं। पूर्वकी स्थिति और वर्तमानकी स्थितिमें जमीन-आसमानका अन्तर आ गया है। आजकी स्थितिके अनुरूप पूर्वमें टेलीविजन, फेसबुक, ट्यूटर, वाट्सएप नहीं थे। पूर्वमें लोगोंके चिन्तनमें आजकी तरह विराट् भौतिक चिन्तन नहीं था, उनमें अतीतका चिन्तन और अनुभवजनित ज्ञान था। उनमें सहजता थी, उनमें सरलता थी, उनमें धैर्य था और उनमें वास्तविक धर्मकी समझ थी। उस वक्त सारा जीवन नियमोंके अनुरूप होता था। नियम ही सर्वोपरि थे, उस वक्त आदर, सम्मान, लज्जा, शर्म थी और जहाँ नियम-धर्म, लज्जा, शर्म होती है; वहाँ गुणोंके औचित्यकी प्राथमिकता नहीं रहती, नियम ही जीवनको सुव्यवस्था प्रदान करते हैं।

कुछ वर्षों पूर्वमें ही योगका इतना प्रचार-प्रसार क्यों हुआ? आज योगके विश्वविद्यालय खुल गये, विद्यालयोंमें योगकी शिक्षा अनिवार्य कर दी गयी, क्यों? पूर्वमें इसे इतना बढ़ावा प्राप्त नहीं हुआ, उसका मूल कारण मात्र यही था कि उस वक्त लोग मेहनती थे, वातावरण शुद्ध था, उस वक्त रोग इतने नहीं थे कि योगको अपने विराट् स्वरूपमें प्रकट होनेकी आवश्यकता पड़े, आज रोगोंने चारों ओरसे आक्रमण कर दिया है तो स्वाभाविक है कि योगको अपने मूल स्वरूपमें आना पड़ा।

हमारे डी एन ए में सात पीढ़ीके क्रोमोजोम मौजूद

होते हैं। अभी विज्ञान उस स्तरतक नहीं पहुँच सका, अन्यथा हमारे डीएनए से हमारे परदादाके परदादाका भी क्लोम निर्मित किया जा सकता, हूबहू वैसाका वैसा ही, पूर्वमें लोगोंको अपने सात पीढ़ीतकके नाम, उनका पूरा इतिहास उन्हें स्मरणमें था; क्योंकि उनकी चेतना पूर्ण रूपसे भविष्यमें न होकर अतीतके अनुभवके रूपमें थी। आजकी पीढ़ीके युवासे पूछकर देखो कि परदादाका नाम क्या है?

पूर्वमें लोग विवाहहेतु ऋषि, गोत्र, भैरव, कुलदेवी, रहन-सहन, खान-पान सभीका स्मरण रखते थे, उनका अनुभव आजके गुणोंके मिलानका वैज्ञानिक धार्मिक मूल स्तम्भ था, वे जानते थे कि किस घरमें बिटियाको देनेपर वह सुखी नहीं रहेगी, जानते थे कि किस परिवारके संस्कार उनके संस्कारसे पृथक् (षडाष्टक दोष, वैरयोनि दोष) हैं, वे अनुभवसे जानते थे कि किस परिवारमें शादीसे सन्तान-सम्बन्धी दिक्कत रहती है (नवपंचम दोष)। उन्हें पूर्वका अनुभव था कि किस परिवारमें जातिगत चार पीढ़ी उपरान्त लकवा, चर्म आदि रोगकी सम्भावना रहती है। वे नियत समयपर वैवाहिक आयोजन उस परिवारसे नहीं करते थे। वे जानते थे कि खान-पान पृथक्, पूजन-आराधना, साधना पृथक् होनेसे क्या समस्या आती है, वे उस तरहके बेमेल परिवारसे विवाहतक नहीं करते थे, उनका अनुभव पिछली सात पीढ़ीतकका था, हमारा कितना है चार महीने, एक सालका। उस वक्त परिवारका अर्थ पूरा गाँव था, आज परिवारका अर्थ हम दो-हमारे दो, आज हम उस मूल सूत्रको दरकिनारकर क्या देखते हैं कि अच्छी नौकरी, पैसा, मकान। अन्य रहस्यसे दूर रहनेका परिणाम आज तलाक, विवाद, मारपीट-जैसी घटनाओंके रूपमें हमें सामने देखनेको मिल रहा है।

पूर्वमें कुण्डली-मिलानका आधार धर्मके अन्तर्गत व्यवहार-शास्त्र, अनुभव-शास्त्र था। आज वह ज्ञान लुप्त हो गया है, तभी ज्योतिष-शास्त्रको आज अपने विराट् स्वरूपमें सामने आना पड़ा, अभी शास्त्रोंमें दर्शन, यज्ञ-चिकित्सा, संकल्प-शक्ति, मन्त्रशक्ति-जैसे और भी हजारों रहस्य विद्यमान हैं, जो परमात्मा स्वयं समयके साथ सुव्यवस्थित रूपसे सामने प्रस्तुत करेगा।

क्या आज हमारे पास पूर्व-जैसे कोई अनुभव-नियम हैं, कितना जानते हैं हम? दूसरे पक्षका कोई आधार है? जिन आधारोंको हम देखते हैं। मकान, नौकरी, पैसा—ये जीवनके मूल आधार होते तो उन घरोंमें अशान्ति, तलाक, झगड़े न होते। मूल आधार आज हम भूल चुके हैं, इसीलिये ज्योतिष-शास्त्रको सामने आना पड़ा।

मंगल दोषको पूर्वमें प्राथमिकतासे नहीं देखा जाता था, आज भी ग्रामीण अंचलमें मंगल दोषको प्राथमिकतापर नहीं देखा जाता, मंगल दोषके कारण हारमोंस अनियन्त्रित होते हैं, जिसके कारण व्यक्ति भावविभोरमें प्रेम-प्रसंगमें पड़ सकता है और चारित्रिक दोष लगता है, साथ ही ऐसे जातकके सम्भवतः दो विवाह-योग बनते हैं। पूर्वमें नियम-कायदे कठोर होते थे, साथ ही व्यक्ति धार्मिक नियमोंका पूर्ण पालन करता था, मंगल कितना भी भारी हो, नियम भय और लोकलिहाज, धर्मके आगे उसका अस्तित्व नहीं नजर आता था। आज वह स्थिति नहीं है, आज लोकलिहाज, शर्मने फेसबुक और वाट्सऐपके आगे अपने घुटने टेक दिये। अतः आज मंगल दोषका निवारण किया जाना आवश्यक हो गया है।

पहले रिश्तोंका आधार दो परिवारोंका मिलन था। स्नेहकी पराकाष्ठा क्या होगी, जब कोई कहता है कि मेरे घर लड़की हुई तो तेरे लड़केसे शादी कराऊँगा, पहले रिश्ते देखनेका आधार कुछ और था, आज रिश्ते ऑनलाइन और समाचार-पत्रमें देखे जाते हैं।

जो लोग इस ज्योतिष-शास्त्रके विरोधमें हैं, उनसे इतना ही कहना है कि अगर वे आधुनिक बनना चाहते हैं तो पाश्चात्य जगत्में विवाहकी कितनी गम्भीरता है; इससे शायद कोई भी अनभिज्ञ नहीं होगा।

यद्यपि कुछ स्वार्थी लोगोंके कारण ज्योतिषशास्त्रकी गरिमाको आघात लगा है और जो लोग इनके शिकार हुए हैं, उनका आवेशित होना भी जायज है, परन्तु एक बात यह भी पूर्णतया स्वीकार करनेयोग्य है कि एक ज्योतिषी गलत हो सकता है, परन्तु ज्योतिषशास्त्र कदापि नहीं।

विश्नोई सम्प्रदायके जाम्भाणी साहित्यमें प्राप्त प्रेरक बोधकथाएँ

(श्रीविनोद जम्भदासजी कड़वासरा)

बोध यानी ज्ञान। मूलमें सभी ज्ञानी हैं, कोई अज्ञानी नहीं है। ज्ञान तो सबके अन्दर है, केवल विस्मृति हुई है। भूले हुएकी याद आना ही ज्ञान है। इस भूलको ही अबोधता कहते हैं, जैसे बालककी अबोधावस्था। जैसे-जैसे यह भूल मिटती जाती है, उसे बोध होता जाता है। गीताने इसे लब्धा कहा है—**स्मृतिर्लब्धा।** खोई हुई वस्तुकी पुन: प्राप्ति को लब्धा कहते हैं। यह प्रत्येक व्यक्तिका अनुभव है कि वह कोई नयी बात सीखता है तो उसे लगता है, जैसे उसे यह पहलेसे ही पता थी, परंतु याद नहीं आ रही थी। इस याद दिलानेकी क्रियामें जो सहायक बनता है, उसे गुरु कहते हैं और इस क्रियासे उसे जो स्मृति आती है, उसे बोध कहते हैं। इस भूलको मिटानेके लिये अनेक उपाय अपनाये जाते हैं, जिसमें सबसे सशक्त उपाय है—बोधकथा। कथाके माध्यमसे किसी बातको सहजतापूर्वक समझा जा सकता है। बोधकथामें पात्रके चरित्रको इस प्रकार सुरुचिपूर्ण ढंगसे प्रस्तुत किया जाता है कि पाठकको वह चलचित्रकी तरह लगता है और कथा-सन्देश सुगमतासे उसे ग्राह्य हो जाता है। कथा-सत्संगका मूल उद्देश्य यही है कि जीवको परमात्माके साथ उसके अभिन्न सम्बन्धका बोध हो जाय।

अन्यान्य मत-पन्थोंकी तरह विश्नोई सम्प्रदायके साहित्यमें भी बोधकथाएँ विपुल मात्रामें मिलती हैं। राजस्थानी भाषामें काव्यात्मक शैलीमें लिखी गयी ये कथाएँ साहित्य-जगत्‌में अपना विलक्षण स्थान रखती हैं। संवत् १५४२में श्रीगुरु जम्भेश्वर भगवान् अपर नाम श्रीजाम्भोजीद्वारा संस्थापित विश्नोई सम्प्रदायका साहित्य, जिसका प्रचलित नाम 'जाम्भाणी साहित्य' है, उसमें विश्नोई सन्त कवियोंकी सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दीकी रचनाओंपर नजर डालें तो प्रमुख रूपसे वील्होजी, केसोजी गोदारा और सुरजनजी पूनियाँ—इन तीन सन्त कवियोंकी कथाओंका उल्लेख करना यहाँ समीचीन होगा। इनके अलावा सम्प्रदायमें और भी कई ऐसे रचनाकार हुए हैं, जिन्होंने कथाएँ लिखी हैं।

सन्त वील्होजीकी कथा धड़ाबन्ध, कथा औतारपात, कथा गुगलियैकी, कथा पूल्हैजीकी, कथा दूणपुरकी, कथा जैसलमेरकी, कथा झोरडांकी, कथा ग्यांनचरी और सन्त केसौदासजी गोदाराकी कथा बाललीला, कथा उदै अतलीकी, कथा सैंसै जोखाणीकी, कथा मेड़तेकी, कथा चित्तौड़की, कथा इसकंदरकी, कथा जती तलावकी, कथा विगतावली, कथा लोहापांगलकी, कथा भींव दुसासणीकी, कथा सुरगारोहणी, कथा बहसोवंणी, कथा म्रघलेखाकी तथा सन्त सुरजनदासजी पूनियांकी कथा चेतन, कथा चितांवणी, कथा धरंमचरी, कथा हरिगुण, कथा औतारकी, कथा परसिध, कथा गजमोख, कथा उषा पुराण आदि इन सन्तोंकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

उपरोक्त इन कथाओंकी विषयवस्तुका हम अवलोकन करें तो ये सब जीवको संसारकी असारता बताकर उसे ईश्वर-साक्षात्कारकी ओर प्रेरित करती हुई प्रतीत होती हैं।

विस्तारभयसे इन कथाओंमेंसे कुछेककी ही यहाँ चर्चा सम्भव है। वील्होजीकी 'कथा गुगलियैकी'में श्रीजाम्भोजी मारवाड़क्षेत्रमें पड़े घोर अकालके समय गाँवोंको छोड़कर उजड़ रहे लोगोंको आश्वस्त करते हैं और जबतक सुकाल नहीं हो गया, उनके लिये अन्नकी व्यवस्था करते हैं। वर्षा होनेपर अपने योगबलसे गूगलके धुएँसे एक ऊँट उत्पन्न करके उसपर किसानोंको तात्कालिक सिन्ध प्रदेशसे फसलोंके उत्तम बीज लानेके लिये भेजते हैं। वह ऊँट तेजगतिसे अपने कार्यको पूर्ण करके वापस आकर लुप्त हो जाता है। इस कथामें दर्शाया गया है कि सामर्थ्यवान्‌को सदा असमर्थकी सहायता करनी चाहिये ताकि वह समाजकी मुख्यधारासे जुड़ा रहे। किसानोंको सदा फसल बोते समय उत्तम बीजोंका ही प्रयोग करना चाहिये, इससे फसल भरपूर मिलती है, निम्न स्तरके बीजोंके कारण फसल खराब हो जाती है और किसानकी कमरतोड़ मेहनत बेकार

चली जाती है। बीजके परिप्रेक्ष्यमें इसका आध्यात्मिक पक्ष भी है कि जैसा बीज होगा, वैसी ही खेती होगी यानी खेतरूपी शरीरसे जैसे कर्म करोगे, वैसा ही फल प्राप्त होगा। इन्हींकी अन्य कथा जिसका नाम 'कथा दूणपुरकी' में एक चतुर्थ वर्णके मोतीराम नामक भक्तकी कथा है। मोतीराम धर्मके नियमोंका कठोरतासे पालन करता है और इस सम्बन्धमें वह उच्च वर्णोंके पथभ्रष्ट लोगोंको अछूत समझता है। यह बात उच्च वर्णके लोगोंको हजम नहीं होती, वे राजाके कान भरकर उसे जेलमें डलवा देते हैं। वहाँ वह अपने गुरु श्रीजम्भोजीसे करुण पुकार करता है, वे वहाँपर प्रकट होते हैं और राजा तथा प्रजा दोनोंको उपदेश देते हुए कहते हैं कि भगवत्प्राप्तिमें सब जीवोंका समान अधिकार है, इसमें वर्णभेद निरर्थक है। कोई उत्तम कुलमें जन्म लेनेमात्रसे उत्तम नहीं बन जाता, उसके कर्म ही उसकी स्थिति निर्धारित करेंगे—

'उत्तम कुलि का उत्तम न होयबा, कारण किरिया सारूं।'

(सबदवाणी)

भगवान्‌की कलम सबका हिसाब-किताब लिखती है, वह मिटाया नहीं जा सकता। कोई इस भ्रममें नहीं रहे कि मेरा कुल, वर्ण बहुत ऊँचा है। किये हुए कर्म तो भोगने ही भोगने पड़ेंगे—

कलम ज सीरजण हार की, परति न पाछी होय।
जो करिसी सो भुगतिसी, भरम न भुलौ कोय॥

इस कथामें मोतीरामद्वारा अपनी पत्नीको कही गयी दो पंक्तियाँ अति मार्मिक बन पड़ी हैं, जिसमें वह अपनी पत्नीको धीरज देते हुए कहता है कि—'हमें तो अहर्निश भगवान्‌का भजन करना है, वे चाहेंगे तो इस संकटसे उबार लेंगे, अगर हमारे भाग्यमें ही इन लोगोंके हाथों मरना लिखा है तो भी कोई चिन्ताकी बात नहीं है, क्योंकि धर्मका पालन करते हुए मरनेपर मोक्ष मिलेगा।'

कविने मोतीरामको साधु कहकर सम्बोधित किया है—

साध कह सुण्य साधणी, सीवरौ सिरजैण हार।
उबारै तौ उबरां, मरां तो मोख दवार।

वील्होजीद्वारा रचित 'कथा झोरडांकी' रावण और गोयंद नामक दो चोरोंकी कथा है। वे मारवाड़से सिन्ध प्रदेशमें पशु चुरानेके लिये जाते हैं। रास्तेमें बियावान, बहुत लम्बा-चौड़ा रेगिस्तान पड़ता है। गर्मीका मौसम था, उनके पास पानीसे भरी हुई चमड़ेकी बनी हुई 'पखाल' थी, उसे वे एक वृक्षपर टाँगकर चले जाते हैं। वहाँ जाकर उन्होंने बहुत-सी चोरियाँ कीं और वापस लौटते समय रेगिस्तानको पार करते हुए प्याससे व्याकुल होकर जैसे-तैसे उस वृक्षके पास पहुँचते हैं, पानी पीनेके लिये जैसे ही उस पखालको नीचे उतारा वह तो खाली मिली, किसी जानवरने उसे काट दिया था, जिससे सारा पानी बह गया। अब उनके प्राण सूखने लगे, उन्होंने श्रीजम्भोजीसे प्रार्थना की कि आज किसी प्रकार प्राण बच जाय तो हम यह चोरीका धन्धा छोड़ देंगे। तभी एक छोटा-सा बादल प्रकट होता है और पानी बरसाकर पासके एक बड़ेसे गड्ढेको भर देता है। अपने वादेके अनुसार उन्होंने चोरीरूपी निन्दित कर्मको त्याग दिया और पवित्र कमाई करके जीवनयापन करने लगे। एक दिन यात्राके समय वे किसीके यहाँ रात्रि-विश्रामके लिये रुके, चोरीका पुराना संस्कार जाग्रत् हो गया, रात्रिमें उठे और मकान-मालिककी बैलोंकी एक जोड़ी चुराकर रवाना हो गये। सुबह उठनेपर घरवालोंको वे दोनो यात्री और बैल गायब मिले। गाँवके बहुतसे लोग उनका पीछा करते हुए उनके समीप पहुँच गये, उन्होंने एक बार पुनः श्रीजम्भोजीसे रक्षा करनेकी प्रार्थना की, तब वे क्या देखते हैं कि उन बैलोंके रंग और सींगोंके आकार-प्रकार बदल गये हैं। बैलोंके मालिकने कहा कि रस्सी तो वही है, परंतु बैल वे नहीं हैं। उन दोनों चोरोंको पकड़कर बैलोंसहित श्रीजम्भोजीके समक्ष पेश किया गया, उन्होंने उन चोरोंको फटकारते हुए कहा कि—'अपने पापकर्मोंके लिये हृदयमें ग्लानि भरकर घोर पश्चात्ताप करते हुए उन कर्मोंको पुनः न करनेका संकल्प ही सच्चा प्रायश्चित्त है, परंतु ऐसे संकल्पके बाद भी दोबारा उन कर्मोंके करनेसे दुर्गति ही होगी; क्योंकि रोज-रोज बैलोंका रंग और सींगोंका आकार नहीं बदलेगा यानी ऐसेमें रक्षक कबतक रक्षा करेगा। दयाहीन और चोर स्वर्गमें प्रवेश

पानेके अधिकारी नहीं हैं।' जप, तप, शील, क्षमा और साधुसेवासे पाप नष्ट हो जाते हैं और ये गुण कैवल्य ज्ञानीके संसर्गसे प्राप्त होते हैं—

गोयंद चोरी नां करी, कलंक न लाई राह।
बार बार होसी नहीं, सेत वरण अरु स्याह।
सीख दिया सतगुरु कह, सांभल रावण झोर।
सुरगे दाद न पावहि, दया हीण अरु चोर।
जप तप शील खिंवती, और साधा की सेव।
एह पांचू पालण पाप का, केवल ज्ञानी देव।

कवि केसोजी गोदाराकी एक रचना 'कथा उदै अतलीकी' में आतिथ्य-सत्कारका मार्मिक चित्रण किया गया है। उदो और अतली नामक दम्पती अतिथि-सेवाके लिये इतने आतुर रहते कि जिस दिन उनके घर कोई अतिथि नहीं आता, उन्हें चैन नहीं पड़ता। उन्हें जब लगता कि इस गाँवमें अतिथि कम आते हैं तो वे उस गाँवको छोड़कर दूसरे गाँवमें बस जाते। अतिथिको वे भगवान् मानते और उसकी बहुत प्रेमपूर्वक सेवा करते। उसके लिये विभिन्न प्रकारके व्यंजन बनाते और उसकी थालीमें तबतक घी डालते जबतक अतिथि आग्रहपूर्वक मना न कर देता। कई बार तो ऐसा भी होता जब घी डालते समय अतिथिका ध्यान कहीं और चला जाता तो घी थालीके ऊपरसे बहने लगता। '**अतिथिदेवो भव**'-की उक्तिको चरितार्थ करनेवाले उस दम्पतीका जीवन उस दिन सफल हो जाता है, जब भगवान् उनकी सेवासे रीझकर उनके घर पधारते हैं और छद्मवेशमें उनके सेवाधर्मकी परीक्षा लेते हैं। उदो-अतली उस परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं। भगवान् प्रकट होकर दर्शन देते हैं और उन्हें अपना निज धाम प्रदान करते हैं—

वीध्य सुं वसतर धरया विछाय,
जन जीमैण नै लिया बुलाय।
चरण पखाल्य चरणौदिक पीय।
जो जीम सो न कर नांकार,
अतली घीरत न खंडै धार।
अतली क हुंती आखड़ी,
नांकार विण्य नै रह खड़ी।
धन खरच धड़कै नहीं हीयो,
उं नीहचौ अतली जी कीयो।
अतली अंतरि असौ पीयार,
भगत पधारया सीरजंण हार।

स्वार्थके वशीभूत हुए संसारको जब अतिथि भाररूप लगता है, तब यह कथा उसे प्रेरणा देती है कि अतिथि-सेवा भी भगवत्प्राप्तिका एक साधन है।

केसोजी गोदाराकी 'कथा सैंसै जोखांणीकी' में सैंसा कस्वां अपने गाँवका एक सम्पन्न आदमी है। वह जम्भोजीका शिष्य है और उनके पास जाकर वह अपने थोड़े-से किये दानको अधिक बताकर उसकी शेखी बघारता है। तब वे उसे ऐसा करनेसे रोकते हैं। वे सदैव अपने उपदेशमें कहते हैं कि—'दान करनेके बाद उसका अभिमान नहीं होना चाहिये, अपने पास उपलब्ध थोड़ी वस्तुमें-से भी थोड़ी दान कर देनी चाहिये, होते हुए ना नहीं कहना चाहिये। भगवदर्पण किया हुआ दान अनन्त गुना फलदायी होता है।' परंतु सैंसेपर ये बातें असर नहीं करतीं। एक दिन श्रीजाम्भोजी रूप बदलकर उसके घर भिक्षा लेने जाते हैं, तब उसके घरकी स्त्रियाँ उन्हें अनादरपूर्वक रात्रिका बासी भोजन और ओढ़नेके लिये एक मैली-कुचैली फटी-पुरानी गूदड़ी देती हैं तथा उनका भिक्षापात्र भी खंडित कर देती हैं। दूसरे दिन सुबह जब सैंसा उनके पास आकर प्रतिदिनकी भाँति अपने दानाभिमानका प्रदर्शन करता है तो उसे वे वस्तुएँ दिखायी जाती हैं, जो कल उसके घरसे भिक्षामें प्राप्त हुई थीं। वह बहुत लज्जित होता है, उसे अपने व्यर्थके अभिमानपर ग्लानि होती है और उसे लगता है कि इस दोषके कारण भगवान् मेरा त्याग कर देंगे, फिर मुझे भवसागरसे कौन उबारेगा? पश्चात्ताप करते हुए सैंसा भविष्यमें अभिमान न करनेका प्रण लेता है—

भवसागर जाम परत, जाणंत पड़ीयो जोय।
हरजी छोड़ हाथ ता, काढ़ि नै सक कोय।

सुरजनजी पूनियांकी 'कथा हरिगुण' में भगवान्‌की अपार महिमाका बखान इस संकोचके साथ किया गया है कि कहाँ तो आपकी महिमाका सागर और कहाँ मैं एक छोटा-सा पक्षी, मेरी चोंचमें सागर कैसे आ सकता है?

इनकी पौराणिक आख्यानोंपर आधारित कथाएँ भी

मिलती हैं। 'कथा गजमोख' गज और ग्राहकी लड़ाईमें हारते हुए प्राण कंठगत होनेपर गजराजद्वारा श्रीहरिसे की गयी करुण पुकारकी प्रसिद्ध पौराणिक कथा 'गजेन्द्र मोक्ष' का राजस्थानी भाषामें सरस और भावपूर्ण प्रस्तुतीकरण है। 'कथा उषापुराण' में पूर्वके शापवश कामदेव द्वापरयुगमें श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्ध और कामदेवकी पत्नी रति बाणासुरकी पुत्री उषाके रूपमें जन्म लेते हैं, उसका वर्णन है। दो सौ बत्तीस छन्दोंका यह आख्यान काव्य राजस्थानी भाषामें एक उत्कृष्ट सृजन है। कविकी 'भोगळ पुराण' और 'रामरासौं' भी ऐसी ही रचनाएँ हैं।

'कथा चेतन' और 'कथा चितावणी' में जीवको अशुभ कर्मोंसे सावधान रहने और शुभ कर्मोंको करनेके लिये प्रेरित किया गया। कर्मोंका फल मिलना अवश्यम्भावी है। कवि चेतावनी देता है कि पापकर्मकी स्फुरणा भी न हो, अन्त:करणकी भूमिमें पड़ा हुआ बीज कभी अंकुरित होगा, पेड़ बनेगा और फिर उसके फल हमें खाने पड़ेंगे, इसलिये हरि नामकी अग्निमें उस बीजको ही भून डालो। सर्वतोभावेन भगवान्‌के शरणागत होकर भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करनेसे कर्मके बन्धन कट जाते हैं।

निम्नलिखित सवैया एक प्रकारसे उनकी कथाओंका सार है और उनके शरणापन्नभावका श्रेष्ठ उदाहरण है—

मघ कीयो तदि भाजि गयो,
सिंघ कियो तदि मारण धायो।
राजी कीयो तदि दान दियो,
रंक कियो तदि मांगि के पायो।
जोई कियो सो मानि लियो,
अब और सोह हरि के मनि भायो।

'हे प्रभु! आपने मुझे हिरण बनाया, तो मैं जान बचाकर भागा, शेर बनाया तो शिकार किया, राजा बनाया तो दान दिया, भिखारी बनाया तो माँगकर गुजारा किया। आपने जो विधान किया वही मैंने स्वीकार किया और आगे भी जो आपको अच्छा लगे वही करना।'

वास्तवमें कथा तो वही है, जो जीवको भगवान्‌में लगा दे, बाकी तो सब व्यथा है। जाम्भाणी सन्तोंने अपनी कथाओंमें इस भावका सम्यक् निर्वहन करते हुए अपनी कलमसे ऐसी प्रेरणादायी कथाओंका सृजन किया है, जो अनन्त कालतक मुमुक्षुओंका मार्गदर्शन करती रहेंगी।

आचरण-शुद्धिमें बोधकथाओंकी भूमिका

(श्रीसुरेन्द्रजी माहेश्वरी)

बोधकथाको भावोंकी अभिव्यक्तिका अप्रतिम साधन माना जाता है। अनुभूतिके सहारे जब किसी सत्य घटनाका उज्ज्वल पक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो ये कथाएँ अपना ठोस प्रभाव डालती हैं। इसकी समरसता तथा रसात्मकता या प्रस्तुत करनेकी विधिमें ज्ञान पक्ष प्रबल होता है। बोधकथाएँ किसी-न-किसी तरह ज्ञानार्जन कराती हैं, इसीलिये ये बोधकथाएँ कहलाती हैं।—डॉ० **सुरेश वर्मा**

वस्तुत: बोधकथाएँ धार्मिक, नैतिक, व्यावहारिक और मानव मनको उद्वेलित करनेवाली होती हैं, जब बोधकथाके माध्यमसे सत्य घटनाका नीतिपरक पक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो वह पूर्णत: उद्देश्यनिष्ठ होती है। बोधकथाओंका मूल उद्‌गम जातक कथाएँ, पंचतन्त्र तथा हितोपदेशकी कथा-कहानियाँ ही हैं, जो पाठकके अन्त:करणको सात्त्विक तथा मानवीय गुणोंसे परिपूर्ण करती हैं। प्राचीन कालमें बिगड़े राजकुमारोंको आदर्शवान् बनानेके लिये विष्णु शर्मा-जैसे पण्डितोंने इसी विधाका उपयोग किया था। भारतीय संस्कृतिमें हमारे धार्मिक ग्रन्थोंका विशेष महत्त्व रहा है। रामायण, महाभारत, वेद, उपनिषदों और अन्यान्य आख्यानोंके माध्यमसे सत्यको उजागर किया गया है।

वर्तमानमें पाठकके पास समयका अभाव होता जा रहा है, अत: बोधकथाओंकी विशेष उपयोगिता मानी जा रही है। बोधकथाओंका कलेवर अत्यधिक प्रभावपूर्ण

और आकर्षक होता है। जो हृदय-तन्त्रियोंको तत्काल झंकृत कर देता है। किसी भी भटके बटोहीका मार्ग प्रशस्तकर उसे सन्मार्गकी दिशामें अग्रसर होनेकी चेतना प्रदान करता है। बोधकथाओंके सम्बन्धमें एमर्सनने कहा है—'जो आदमी मेरा सन्देश सुनता है, जो मुझे समझता है, सदा-सदाके लिये उसपर मेरा अधिकार हो जाता है।'

वर्तमान समयमें नित्य नयी घटनाओंमें चोरी, डकैती, भ्रष्टाचार, दुष्कर्म, बलात्कार, उत्पीड़न, लूटपाट, हिंसा आदिका बाहुल्य है। इन समग्र घटनाओंका बाल मनपर कुत्सित और दुष्प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। वह विविध घटनाओंसे प्रभावित होकर भटक जाता है। ऐसी अवस्थामें बोधकथाएँ रामबाण-जैसी हैं। जो एक नयी चेतना और जागृति उत्पन्न करती हैं। प्राचीन कालमें वन्य जीवोंकी कहानियों, नीति कथाओं, जातक कथाओं, हातिमताई तथा अलिफ लैलाकी लघु कथाओंका विशेष प्रचलन रहा है। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्रीके अनुसार जैसे महाकाव्यके आंशिक गुणोंसे युक्त काव्यको खण्डकाव्य अथवा गीतिकाव्य कहा जाता है, उसी प्रकार कथाशिल्पके आरम्भसे चरम बिन्दुतकके अनेक तत्त्वोंको प्रभावशाली ढंगसे आत्मसात्कर जो विधा प्रकाशमें आयी है, उसे बोधकथा कहते हैं। राजेन्द्र परदेसीका इस सन्दर्भमें कथन है—'किसी भी घटनाको देखकर या सुनकर तत्क्षण जो प्रतिक्रिया कथ्यके रूपमें उभरती है, उसे बोधकथा कहते हैं।'

बोधकथाएँ जीवनको मधुर बनाती हैं। तात्त्विक संदेशोंसे भरपूर होती हैं। वस्तुतः बोधकथाएँ साहित्यरूपी उद्यानमें वे पुष्पावलियाँ हैं, जो मानवमात्रको जीवन-पर्यन्त अपनी सुगन्ध सौरभसे आकृष्ट करती रहती हैं। बोधकथाएँ लघु, सूक्ष्म, गहन, प्रहारक, पैनी, सांकेतिक और ग्राह्य होती हैं, अतः तत्काल प्रभावके लिये जानी जाती हैं। बोधकथाएँ वास्तविकताकी पथरीली और कठोर राहपर चलनेवाले राहीको सोचनेके लिये मजबूर कर देती हैं। इन कथाओंमें पात्रोंकी संख्या कम होती है। ये कथाएँ सरस, सरल और बोधगम्य होती हैं। दैनिक जीवनसे सम्बद्ध घटनाक्रमसे जुड़ी होती हैं, जो प्रकाशस्तम्भका कार्य करती हैं।

शिक्षण संस्थाओंमें विषयाध्यापनमें कई बार ऐसे अवसर आ ही जाते हैं, जब किसी सन्दर्भ या घटनाक्रमका सहारा लेकर तथ्योंको स्पष्ट किया जाता है। ऐसे में बोधकथाओंका उपयोग प्रासंगिक होता है, जो विद्यार्थियोंमें संस्कारोंके निर्माणमें सहयोगी होती हैं।

विशेषतः शिक्षण संस्थाओंमें जहाँ नयी पीढ़ीकी पौध तैयार हो रही है, वहाँ यदि बोधकथाओंद्वारा बाल मनको पोषण दिया जाय तो कलके नागरिक सही मार्गका अनुसरण कर सकेंगे। उन्हें विषयाध्यापन, कला, शिक्षा, पुस्तकालय, वाचनालय, खेल-मैदान, सहगामी प्रवृत्तियों आदिमें बोधकथाओंका प्रयोग विशेष सार्थक सिद्ध होगा। आचरण-शुद्धिके लिये बोधकथाएँ एक सशक्त साधन हैं, बोधकथाओंकी भावभूमिके आत्मीकरणसे स्थायी परिवर्तनकी सम्भावनाएँ बन जाती हैं। बेईमान व्यक्ति ईमानदार, भ्रष्टाचारी सदाचारी, क्रूर दयालु और डरपोक निडर बननेकी दिशामें अग्रसर होता है। मानवीय मूल्योंका आविर्भाव होता है तथा व्यक्तिका नैतिक आचरण शुद्ध बनता है, जो राष्ट्र और समाजकी सुख-समृद्धिके लिये आवश्यक है। बोधकथाएँ मानव मनको अध्यात्म-अमृतसे सराबोर करती हैं तथा परमात्माके प्रति आस्था उत्पन्न करती हैं, जो विश्व-बन्धुत्वकी भावनाको प्रबल बनाती है।

बोधकथाओंसे परिचय कराना नैतिक शिक्षाकी दृष्टिसे उपयोगी सिद्ध होगा। इनके माध्यमसे बालकोंमें सदाचार, सेवा-भावना, उदारता, श्रमनिष्ठा, देशप्रेम, अनाचारोंसे मुक्ति और माता-पिता तथा गुरुजनोंके प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न की जा सकती है। आवश्यकता है इस हेतु योजनाबद्ध शिक्षण प्रबन्धन एवं निर्देशनकी। अतः आजकी भागमभागवाली जीवन चर्यामें नैतिक आचरणके लिये बालकोंका दिशाबोध बोधकथाओंके माध्यमसे अधिक सार्थक सम्भव हो सकता है।

संत-वचनामृत

(वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)

❀ भगवान्‌के स्वरूप पिता-माता, ब्राह्मण, सन्त, गुरुदेव, तुलसी, पीपल, मन्दिर तथा सब देवोंको प्रणाम करना चाहिये। शरीरसे साष्टांग अथवा वाणीसे प्रणाम यह भी सम्भव न हो तो मन-ही-मनसे नमस्कार कर लेना चाहिये। इस प्रकार भक्तिसे युक्त जिसका जीवन है, वह मुक्तिदाता श्रीकृष्णके चरणोंको, प्रेमको पानेका अधिकारी है। उसे भक्ति अवश्य प्राप्त होती है। राजा बलिने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया, अन्तमें भगवान्‌ने और देवताओं-ऋषियोंने बड़ाई की।

❀ भक्तोंके लिये भगवान् सर्वदा सर्वत्र कृपा करते हुए दिखायी पड़ते हैं। भक्त और अभक्त दोनोंपर प्रभु कृपा करते हैं। भक्तोंको प्रेमकर और दुष्टोंको मारकर प्रभु मोक्ष देते हैं। पतिव्रताका मन पतिकी ओर, कृपणका मन धनकी ओर, विषयीका मन विषयोंकी ओर जैसा लगता है, उसी प्रकार भक्तका मन भगवान्‌की ओर लगता है। ऐसी मनकी लगनसे भगवान्‌की कृपाका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। जटायुपर कृपा करते समय भगवान्‌ने कहा— लक्ष्मण! शरणागतरक्षक, धर्मपरायण, शूरवीर सर्वत्र मिलते हैं, यहाँतक कि पशु-पक्षियोंकी अधम योनियोंमें भी। देखा! जटायु महान् भक्त और धर्मात्मा हैं, तात्पर्य यह है कि भक्त सर्वत्र हैं।

❀ मुए सकल मरिहैं सकल घरी पलक के बीच।
तुलसी काहु नहिं लही गीधराज सी मीच॥

जो पैदा हुए हैं, वे अवश्य ही मरेंगे; चाहे अब चाहे घण्टाभर बाद अथवा सौ वर्ष बाद यानी सभी मरे हैं, आगे भी मरेंगे, परंतु जटायुकी-सी मृत्यु किसीको भी नहीं मिली। प्रभुकी गोदमें प्रभुको देखते हुए मृत्यु हुई। धन्य भक्त जटायु! धन्य भक्त जटायु!!

❀ हमारा स्वभाव है कि अनुकूलतामें भगवत्कृपा मानते हैं और प्रतिकूलतामें नहीं। किंतु सन्त अनुकूलता एवं प्रतिकूलतामें सर्वत्र भगवत्कृपाका ही अनुभव करते हैं। ईश्वर दयामय है, करुणामय है, कभी किसी जीवका अहित नहीं करता है। कदाचित् जीवको शुद्ध करनेके लिये प्रभु दण्ड देते हैं।

❀ भगवत्-स्मरणसे सभी विघ्न दूर हो जाते हैं। जिसके मनमें विश्व-कल्याणकी भावना है, वही भगवत्-प्रिय है। संसारी काम बन जायँ, सभी काम बन जायँ तभी हम भगवत्कृपा मानें—यह ठीक नहीं है। बहुत काम ऐसे हैं, जिनका बिगड़ना भी हमारे कल्याणके लिये है। कामके बननेसे या बिगड़नेसे कल्याण होगा—इस बातको हम नहीं जान सकते हैं। यह प्रभुको ही पता है। भगवत्कृपा और प्रारब्धपर विशेष विश्वास रखना चाहिये। हमारी दृष्टिमें थोड़ा समय है, ईश्वरकी दृष्टिमें अनन्त समय है।

❀ कृपामय प्रभुकी कृपा तो निरन्तर बरस ही रही है, पर हम लोग उसका सम्यक् प्रकारसे अनुभव नहीं कर पाते हैं। सारे अनर्थोंका मूल अहंकार है, वही ज्ञान-भक्तिकी प्राप्तिमें बाधक है। प्रभु कृपा करके उसको नष्ट करते हैं, उस समय हम अज्ञानी जीव काल-कर्म-ईश्वरको भी दोष देने लग जाते हैं। जो कृपाश्रयीजन हैं, वे ही अनुभव करते हैं कि हमको जो कष्ट मिला है, वह या तो अहंकारको कम करनेके लिये है अथवा मिटानेके लिये है। भगवान् जो भी करते हैं, उससे भक्तोंका कल्याण ही होता है।

❀ शरीरके स्वस्थ रहनेकी अपेक्षा मनके स्वस्थ रहनेकी महिमा अधिक है। मेरा मन प्रभुकी कृपाका किंचित् अनुभव करता है, उसीसे प्रसन्न रहता है। शरीरका धर्म है पैदा होना, बढ़ना, क्षीण होना एवं नष्ट हो जाना। इन्हें हम लोग रोक नहीं सकते हैं, अत: जैसी स्थिति हो प्रभुका स्मरण करते रहें, यही अपना कर्तव्य है। इसमें भी प्रभुकृपाकी आवश्यकता है।

❀ भगवत्कृपाका अनुभव करना चाहिये। यह सबसे सरल साधन है। भजन-पूजन आदि जितने साधन हैं, उनमें कठिनाई है। सामग्री-संचय-विधिका भी कुछ-न-कुछ पालन अनिवार्य हो जाता है, पर कृपाका मनमें अनुभव करना इससे अति सरल है।

तुलसीदाससे पूछा गया कि अबतकके भजन-साधनसे आपको क्या मिला? तो उन्होंने कहा कि—

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥

प्रभुकी लेशमात्र कृपासे मुझ मतिमन्दको परम विश्राम प्राप्त हुआ। [**'परमार्थके पत्र-पुष्प'से साभार**]

जीव-शिक्षा-सिद्धान्त

[स्वामी श्रीहरिदासकृत अष्टादश पद]

[गतांकसे आगे]

चतुर्दश पद

झूठी बात साँची करि दिखावत हो हरि नागर।
निसिदिन बुनत उधेरत जात प्रपंच कौ सागर॥
ठाट बनाइ धर्‍यौ मिहरी कौ हे पुरुष ते आगर।
सुनि हरिदास यहै जिय जानौ सुपने कौ सौ जागर॥

भावार्थ—अहो हे हरि! अर्थात् सबके मनको हरनेवाले। हे नागर चतुरशिरोमणि! हम आपकी चतुराई बताते हैं कि आप झूठी बात माने मिथ्या जो संसार है, उसे साँची करि दिखावत अर्थात् सत्य प्रतीत कराते हो। इस प्रपंचकौ अर्थात् विश्वको दिनमें बनाते हो और रात्रिमें नाश करते हो। अर्थात् जब ब्रह्माका दिन होता है, तब सृष्टि होती है और जब ब्रह्माकी रात होती है, तब प्रपंच—संसार तिरोहित हो जाता है—मिट जाता है। सो आप इस प्रपंचके सागर हो—न जाने कितने प्रपंच आपके भीतर भरे हैं।

हे पुरुष! तुम्हारी जो मिहरी माया है, उसके द्वारा आपने यह ठाट—विश्व बनाकर धर्‍यौ—धारण कर रखा है। आपकी सत्तासे ही यह संसार है। सो आप बड़े आगर—चतुर, श्रेष्ठ हो। रसिक अनन्य कमल-कुल-दिवाकर श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज कहते हैं कि साधक! तू श्रीहरिका दास है, तूने उनकी शरण ली है, तो सुन, अपने जियमें यही जान कि यह सब संसार स्वप्नसे जागनेके समान है। जैसे मनुष्य सत्यरूपमें सोता हुआ भी स्वप्नमें अपना जागना देखता है; परंतु उसका वह जागना मिथ्या है; क्योंकि वास्तवमें वह सो ही रहा है। ऐसे ही शुभ-अशुभमय संसार सत्यके समान प्रतीत होता हुआ भी वास्तवमें मिथ्या ही है।

पंचदश पद

जगत प्रीति करि देखी नाहिंने गटी कौ कोऊ।
छत्रपति रंक लौं देखै प्रकृति विरोध बन्यौ नहिं कोऊ॥
दिन जो गये बहुत जन्मनि के ऐसे जाऔ जिनि कोऊ।
सुनि श्रीहरिदास मीत भलै पाये बिहारी ऐसे पाओ सब कोऊ॥

भावार्थ—इस असत्, भ्रमरूप जगत् संसारसे प्रीति—प्रेम करके देख लिया। जगत्‌में गटीका कोई नहीं है। कोई ऐसा नहीं है, जिससे प्रीतिकी—प्रेमकी गाँठ बँध जाय, बँध सके। छत्रपति—सम्राट् राजा सों लेकर रंक—अकिंचन, दीन-हीन, गरीब, भिखारीतक देख लिये, परंतु सब प्रकृति-विरुद्ध हैं—एकको प्रकृति एक सों बनती नहीं है। कोई भी प्रकृतिके विरुद्ध बना नहीं है। त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके विरुद्ध किसीकी भी रचना नहीं हुई। अर्थात् जब जगत्‌की कारणभूत प्रकृति ही गुण विषमतासे युक्त है, तब उसके कार्य जगत्‌में समानता कैसे हो सकती है? और जहाँ समानता नहीं, वहाँ प्रीति कहाँ? वहाँ प्रीति—मित्रता कैसे हो सकती है? ऐसे देखते हुए बहुत—असंख्य जन्मोंके जो दिन बीत गये, वैसे अब एक दिन भी वृथा मत जाय। रसिक अनन्य नृपति श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज कहते हैं कि 'सुनो, हमें तो प्रेम-रस-माधुर्यनिधि श्रीविहारीजी अच्छे मित्र मिल गये। जैसे हमें श्रीविहारीजी भले-अच्छे मिले, ऐसे सबको मिलें, सब कोई पाओ, सबके ऊपर कृपा करें, यह आपका सबको आशीर्वाद है।

षोडश पद

लोग तौ भूलै भलै भूलैं तुम जिनि भूलौ माला धारी।
अपनौ पति छाँड़ि औरनि सौं रति ज्यौं दारनि में दारी॥
स्याम कहत ते जीव मोतें विमुख भये जिन दूसरी करि डारी।
कहिं श्रीहरिदास जज्ञ देवता पितरनि कौं श्रद्धा भारी॥

भावार्थ—अनादि कर्मात्मक अविद्यारूप मायासे विवश, मुग्ध अज्ञानी साधारण लोग—मनुष्य श्रीहरिको भूल रहे हैं, तो वे भले ही भूलें—भूला करें; क्योंकि जिनको भगवान् श्रीहरिका माहात्म्य (महिमा)-ज्ञान नहीं, जो श्रीहरिके स्वरूप, प्रभाव, गुण, महिमा आदिको जानते नहीं, उनसे हम क्या कहें? वे तो अन्ध, मूढ़, विषयासक्त, विमुग्ध प्राणी हैं। परंतु हे माला धारण करनेवाले जनो! हे श्रीगुरु-शरणप्राप्त जनो! वैष्णवजनो! तुम तो वैष्णव हो,

श्रीहरिके हो चुके हो। तुम तो श्रीहरिको मत भूलो तथा अपने स्वरूपको भी मत भूलो; क्योंकि अपने स्वरूपको जाने बिना श्रीहरिको कैसे भजोगे?

अपनौ पति श्रीहरि, उनको छोड़कर और देवान्तर (देवता, पितर आदि) सों रति (प्रीति) करनेमें निन्दा है। जैसे असत् स्त्री पतिव्रतधर्मको न पालनकर अपने पतिको छोड़कर परपुरुषसे रति—प्रेम करती है, तो वह स्त्री दारनि व्यभिचारिणी, कुलटा, वेश्या कहलाती है। ऐसे ही उस पुरुषकी निन्दाको जानना चाहिये, जो फलकी कामनासे श्रीहरि सौं विमुख होकर अन्य देवतान्तरमें आसक्त है।

श्याम—श्रीविहारीजी कहते हैं कि जिन जीवोंने मेरा सम्बन्ध छोड़कर मेरा भजन छोड़कर फलकी कामनासे अन्य दूसरे देवतादिक सों सम्बन्ध जोड़ लिया, उनका भजन किया; वे जीव मुझसे विमुख हो गये।

श्री अर्थात् प्रियाजी और हरि यानी श्रीविहारीजी, उनके दास-रसिक-अनन्य मुकुटमणि श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज कहते हैं कि इनकी यज्ञ, प्राकृत देवता और पितरोंमें तो भारी बहुत बड़ी श्रद्धा है, जो कि क्षणिक, आपातरमणीय सुखको देनेवाले हैं, और जो परात्पर, परमसुखस्वरूप पुरुषोत्तम श्रीहरि—श्रीविहारीजी हैं, उनसे विमुख हो रहे हैं। सो हे वैष्णवो! मालाकण्ठी धारण करनेवाले जनो! तुम गुरु-गोविन्द (गोविन्दस्वरूप गुरु) सों श्रीकृष्ण-मन्त्रोपदेश ग्रहण कर चुके हो, सो तुम्हारा भूलना अनुचित है।

सप्तदश पद

जोलौं जीवै तौलौं हरि भजि रे मन और बात सब बादि।
द्यौस चारि के हलाभला में तू कहा लेयगौ लादि॥
माया मद गुन मद जोवन मद भूल्यौ नगर विवादि।
कहिं श्रीहरिदास लोभ चरपट भयौ काहे की लगै फिरादि॥

भावार्थ—रे मन! अरे मन! जबतक जीवन है, जीवित है, तबतक केवल श्रीहरिका भजन ही कर। भजनके अतिरिक्त और सब बातें विवादमात्र हैं, अर्थात् त्याज्य हैं, व्यर्थ हैं। अथवा जबतक जीवन है, तबतक ऐसा नियम कर कि पहले हरिका भजन करना, उसके बाद और कुछ बात करना, अन्य सब बातें करना।

चार दिनके हलाभला अर्थात् क्षणिक जीवन अथवा हबड़-हबड़में तू क्या लादकर ले जायगा? अर्थात् भगवद्भजनयोग्य अमूल्य समयको व्यर्थकर, क्लेश सहकर वस्तुएँ इकट्ठी करीं—कोई झूठ बोलकर, कोई धोखा देकर, ऐसे हायतोबा सों जो सांसारिक वस्तुएँ संग्रह करीं, क्या उनको तू लादकर संग ले जायगा? अर्थात् वे सब यहीं धरी रह जायँगी और तू चल बसेगा। इसलिये सांसारिक वस्तुओंकी लिप्सा—इच्छा मत कर।

धन, गुण और यौवन आदिके मिथ्या मद—अभिमानमें पड़कर प्राणी—मनुष्य भगवान्को भूल गया और नगर—संसारके विवादमें भूल रहा है, फँस रहा है।

इस पंक्तिमें पाठान्तर है—***धन मद जोवन राज मद भूल्यौ नगर विवादि।*** धन, यौवन, राज्यादि विभूतियोंके मिथ्या मद—अभिमानमें पड़कर प्राणी मनुष्य भगवान्को भूल गया और नगर—संसारके विवादमें भूल रहा है, फँस रहा है। अथवा विवाद—बहस, झगड़ा, प्रपंचके नगरमें पड़ा हुआ भूल रहा है, फँस रहा है। अर्थात् पूर्वोक्त जो मद हैं, वे परमेश्वरसे बहिर्मुख करानेवाले अनर्थोंके—दोषोंके मूल हैं। इसलिये उनका मद—अभिमान मनमें न लाना चाहिये।

रसिक अनन्य नृपति श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज कहते हैं कि भगवद्भजन भी करता है और फिराद—फरियाद—प्रार्थना, पुकार भी करता है, परंतु लोभ है—लोभासक्त है, तो उस लोभने चरपट—नाश कर दिया है, इससे फिराद क्यों लगे? अर्थात् प्रार्थना स्वीकार नहीं होती है।

अथवा श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज कहते हैं कि यदि लोभ—लोभादि—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरादि ये चरपट—नाश हो गये, तो फिराद क्यों लगे, किसलिये लगे? अर्थात् प्रार्थना करनेकी जरूरत ही नहीं पड़ती, फिर तो परमेश्वर स्वयं ही कृपा करते हैं। इसलिये लोभादिकोंका सर्वथा परित्याग करना चाहिये।

अथवा श्रीस्वामीजी महाराज कहते हैं कि एक दिन तेरी ये लोभनीय सब वस्तुएँ नष्ट हो जायँगी, तब फिर तेरी कोई फिराद नहीं लगेगी। इसलिये लोभादिका

सर्वथा—सब प्रकारसे त्याग कर देना चाहिये।

अष्टादश पद

प्रेम समुद्र रूप रस गहरे कैसे लागै घाट।
बेकाख्यौ दै जान कहावत जानपन्यौ की कहाँ परी बाट॥
काहू कौ सर सूधौ न परै मारत गाल गली गली हाट।
कहिं श्रीहरिदास जानि ठाकुर बिहारी तकत ओट पाट॥

भावार्थ—प्रेम महासमुद्र है, जिसमें रूप-रस जलकी अति गहराई—गम्भीरता, अथाह है। अर्थात् रूपरसके कहर—भीषण भँवरमें कोई पड़ जाय तो उसमेंसे निकल नहीं सकते हैं। तब कैसे लागै घाट—पार कैसे हो सकते हैं? अर्थात् पार नहीं पहुँच सकते। अर्थात् पहुँचनेकी शक्ति-सामर्थ्य ही नहीं है। बीचमें ही डूब जाते हैं। जो भी डूबे, फिर वह उछल नहीं सके। परंतु पार पहुँचे बिना रत्नाकर (समुद्र)-मेंसे रत्न कौन प्राप्त कर सकता है? अर्थात् जो महासमर्थ तैराक है, वही डुबकी लगाकर रत्न ला सकता है।

इसी प्रकार यह रूप-रस-जलसे परिपूर्ण अति गम्भीर प्रेमसमुद्र नित्य किशोर दम्पती श्रीश्यामा-श्याम श्रीकुंजविहारी-कुंजविहारिणीके नित्य विहार रसरूप अद्भुत रत्नोंसे अनन्त, अखण्ड, असीम और परिपूर्ण है। रसिक अनन्य नृपति श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज और उनके अनुगत रसिक अनन्यजन ही इस अद्भुत सरस रत्नाकरमें निर्भय निःशंकतापूर्वक अवगाहन करते हैं और दम्पती-सम्पतीरूप (नित्यविहाररूप) अद्भुत रत्नोंको निकालकर लाते हैं तथा उनका अनुभवास्वादनकर, परखकर उनसे दम्पती श्रीप्रियालालको अलंकृतकर लाड़ करते हैं। इनके अतिरिक्त और तो समुद्रके निकट पहुँचते ही गोता लगा बैठते हैं, डूब जाते हैं।

बेकाख्यौ दै विकारोंके उदयमात्रसे अर्थात् नेत्रोंमें अश्रुजल, शरीरमें पुलक, रोमहर्ष, कम्प, गद्गद और चित्तमें आर्द्रता यानी द्रवितता आदि ये प्रेमके चिह्न दिखाकर अपनेको प्रेमतत्त्वका जानकार कहते हैं अर्थात् ऐसे चिह्न देखकर सामान्यजन यह कहते हैं कि ये प्रेमके ज्ञानी महात्मा हैं। परंतु प्रेमी रसिक विज्ञजन उनके प्रेमके विकारोंको प्रेम नहीं कहते हैं।

जिनके प्रेमके आभासमात्र विकार हुए, साँचे, शुद्ध प्रेमकी प्राप्ति नहीं हुई, उनको जानपन्यौकी कहाँ परी बाट? अर्थात् उनको तो जानकार कहना ही कहाँ सम्भव है? अर्थात् उनको जानकार ही नहीं कह सकते हैं; क्योंकि बाट—उनका मार्ग साधन भी ठीक नहीं है। प्रेमी-रसिक जानकारजनोंका प्रेममार्ग कैसा होता है, यह भी उन्हें ज्ञात नहीं है। तो उन्हें ज्ञाता कैसे कह सकते हैं? जिसका साधन सिद्ध होता है, उसीको ज्ञाता कह सकते हैं।

जब सच्चे प्रेमके विकार ही नहीं हैं और मार्ग—साधनपथ भी ठीक नहीं है, तभी तो किसीका सर माने जहाज सूधा नहीं पड़ता है, अर्थात् ठिकानेपर नहीं पहुँचता है। अथवा तभी तो किसीका सर माने तीर सूधे लक्ष्यपर नहीं पड़ता है। केवल अपनेको प्रेमी-रसिक-ज्ञानी—जानकार जताने—समझानेके लिये गली-गली और हाट-बाजारमें, अर्थात् अपने-अपने मार्गमें, अपने-अपने स्थानमें गाल बजाते-फिरते हैं, माने वितण्डावाद निरर्थक तर्क, बहस करते हुए अपने पक्षकी स्थापना करते फिरते हैं, प्रेमकी चर्चा या प्रदर्शन करते डोलते हैं। इसीलिये उनका साधन ही ठीक कहाँ है?

रसिक अनन्य नृपति श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज कहते हैं कि 'सब वस्तुओंके सामान्यतः और विशेषतः जाननेवाले ठाकुर (प्रभु, ईश्वर) श्रीविहारीजी हैं। वे पाट यानी आच्छादक वस्त्रादिककी ओट अर्थात् आड़ देकर तकत—सबको देख रहे हैं। अर्थात् मायारूप चिक जीव और ईश्वरके बीच पड़ी है। जैसे चिकके भीतर बैठा हुआ मनुष्य बाहरके सब व्यक्तियोंको देखता है, किंतु बाहरके व्यक्ति उसको नहीं देख सकते। ऐसे ही मायारूप चिकके भीतर स्थित ईश्वर सबको देखते हैं और उनको कोई नहीं देख सकते।

अथवा ठाकुर श्रीकुंजविहारी सब बातें भली प्रकारसे जानते हैं; क्योंकि वे हृदयके परदेके भीतर बैठे हुए देख रहे हैं।

अथवा प्रेम-रसका स्वरूप जानना चाहते हो तो अपने भावरूप परदेको हटाकर ठाकुर श्रीविहारीजीसे भाव जोड़ो और उनको देखो, उनके प्रेम-रसके स्वरूपको जानो, पहचानो। वे सबके शासक—ईश्वर होते हुए भी अपनी प्राणप्रियाकी रुचिको लिये हुए सदा-सर्वदा एकरस अपने नित्य केलि-विहार रसमें मग्न—तत्पर रहते हैं, उनका सेवन करते हैं। **[समाप्त]**

प्यासी गौको जल पीनेसे रोकनेके कारण पुत्रहीनता

प्राचीनकालकी बात है, द्वापरयुगके प्रारम्भका समय था, माहिष्मतीपुरीमें राजा महीजित् अपने राज्यका पालन करते थे, किंतु उन्हें कोई पुत्र नहीं था। अपनी अवस्था अधिक देख राजाको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने प्रजावर्गमें बैठकर इस प्रकार कहा—'प्रजाजनो! इस जन्ममें मुझसे कोई पातक नहीं हुआ। मैंने अपने खजानेमें अन्यायसे कमाया हुआ धन नहीं जमा किया है। ब्राह्मणों और देवताओंका धन भी मैंने कभी नहीं लिया है। प्रजाका पुत्रवत् पालन किया, धर्मसे पृथ्वीपर अधिकार जमाया तथा दुष्टोंको, वे बन्धु और पुत्रोंके समान ही क्यों न रहे हों, दण्ड दिया है। शिष्ट पुरुषोंका सदा सम्मान किया और किसीको द्वेषका पात्र नहीं समझा। फिर क्या कारण है, जो मेरे घरमें आजतक पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। आपलोग इसका विचार करें।'

राजाके ये वचन सुनकर प्रजा और पुरोहितोंके साथ ब्राह्मणोंने उनके हितका विचार करके गहन वनमें प्रवेश किया। राजाका कल्याण चाहनेवाले वे सभी लोग इधर-उधर घूमकर ऋषिसेवित आश्रमोंकी तलाश करने लगे। इतनेहीमें उन्हें मुनिश्रेष्ठ लोमशजीका दर्शन हुआ। लोमशजी धर्मके तत्त्वज्ञ, सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशिष्ट विद्वान्, दीर्घायु और महात्मा हैं। वे महामुनि तीनों कालोंकी बातें जानते हैं। उन्हें देखकर सब लोगोंको बड़ा हर्ष हुआ। माहिष्मतीपुरीके लोगोंको अपने निकट आया देख लोमशजीने पूछा—'तुम सब लोग किसलिये यहाँ आये हो? अपने आगमनका कारण बताओ। तुमलोगोंके लिये जो हितकर कार्य होगा, उसे मैं अवश्य करूँगा।'

प्रजाओंने कहा—ब्रह्मन्! इस समय महीजित् नामवाले जो राजा हैं, उन्हें कोई पुत्र नहीं है। हमलोग उन्हींकी प्रजा हैं, जिनका उन्होंने पुत्रकी भाँति पालन किया है। उन्हें पुत्रहीन देख, उनके दुःखसे दुखित हो हम तपस्या करनेका दृढ़ निश्चय करके यहाँ आये हैं। द्विजोत्तम! राजाके भाग्यसे इस समय हमें आपका दर्शन मिल गया है। महापुरुषोंके दर्शनसे ही मनुष्योंके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं। मुने! अब हमें उस उपायका उपदेश कीजिये, जिससे राजाको पुत्रकी प्राप्ति हो।

उनकी बात सुनकर महर्षि लोमश दो घड़ीतक ध्यानमग्न हो गये। तत्पश्चात् राजाके पूर्वजन्मका वृत्तान्त जानकर उन्होंने कहा—'प्रजावृन्द! सुनो—राजा महीजित् पूर्वजन्ममें मनुष्योंको चूसनेवाला धनहीन वैश्य था। वह वैश्य गाँव-गाँव घूमकर व्यापार किया करता था। एक दिन जेठके शुक्लपक्षमें दशमी तिथिको, जब दोपहरका सूर्य तप रहा था, वह गाँवकी सीमामें एक जलाशयपर पहुँचा। पानीसे भरी हुई बावली देखकर वैश्यने वहाँ जल पीनेका विचार किया। इतनेहीमें वहाँ बछड़ेके साथ एक गौ भी आ पहुँची। वह प्याससे व्याकुल और तापसे पीड़ित थी; अतः बावलीमें जाकर जल पीने लगी। वैश्यने पानी पीती हुई गायको हाँककर दूर हटा दिया और स्वयं पानी पीया। उसी पाप-कर्मके कारण राजा इस समय पुत्रहीन हुए हैं। किसी जन्मके पुण्यसे इन्हें अकण्टक राज्यकी प्राप्ति हुई है।'

प्रजाओंने कहा—मुने! पुराणमें सुना जाता है कि प्रायश्चित्तरूप पुण्यसे पाप नष्ट होता है; अतः पुण्यका उपदेश कीजिये, जिससे उस पापका नाश हो जाय।

लोमशजी बोले—प्रजाजनो! श्रावणमासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है, वह 'पुत्रदा'के नामसे विख्यात है। वह मनोवांछित फल प्रदान करनेवाली है। तुमलोग उसीका व्रत करो।

यह सुनकर प्रजाओंने मुनिको नमस्कार किया और नगरमें आकर विधिपूर्वक पुत्रदा एकादशीके व्रतका अनुष्ठान किया। उन्होंने विधिपूर्वक जागरण भी किया और उसका निर्मल पुण्य राजाको दे दिया। तत्पश्चात् रानीने गर्भ धारण किया और प्रसवका समय आनेपर बलवान् पुत्रको जन्म दिया।

इस पौराणिक वृत्तान्तसे यह सिद्ध होता है कि गोमाताकी अवहेलनासे सन्तानहीनता और उनकी कृपासे सन्तानकी प्राप्ति होती है। [पद्मपुराण]

उदासीनाचार्य श्रीश्रीचन्द्रजी महाराज

(स्वामी श्रीसर्वदानन्दजी महाराज, दर्शनरत्न)

उदासीन-सम्प्रदायके प्रवर्तक भगवान् श्रीश्रीचन्द्रजी महाराजका आविर्भाव सं० १५५१ भाद्रपद शु० ९ को तलवण्डी नामक गाँवमें, जो लाहौरसे ३० कोस पश्चिम है तथा आजकल जिसको ननकाना कहते हैं, क्षत्रिय-कुलभूषण श्रीनानकदेवजीकी धर्मपत्नी श्रीसुलक्षणादेवीके गर्भसे हुआ था।

जिस समय आप इस पृथ्वीतलपर आविर्भूत हुए, उसी समय आपका शिशु-शरीर जटा-भस्मादिसे विभूषित था और ज्यों-ज्यों वह बड़ा हुआ, त्यों-त्यों आपने जो एक-से-एक अद्‌भुत चमत्कार दिखलाये, उनको देख-सुनकर लोगोंको यह पक्का विश्वास हो गया कि आप कोई अलौकिक महापुरुष हैं, तथा विषयान्ध जीवोंके उद्धारार्थ ही आपका इस मर्त्यलोकमें पधारना हुआ है। यथासमय आपका यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न हो गया और आप विद्याध्ययनके लिये काश्मीर भेज दिये गये। वहाँ आपने अल्पकालमें ही वेद-वेदांगोंका विधिवत् अध्ययन कर लिया और जब आप ब्रह्मचर्याश्रमका पालन करते हुए सकल शास्त्रनिष्णात हो गये, तब अर्थात् सं० १५७५की आषाढ़ी पूर्णिमाको काश्मीरमें ही आपने सद्‌गुरु स्वामी श्रीअविनाशिरामजीसे उदासीन-सम्प्रदायानुसार दीक्षा ले ली। तत्पश्चात् कुछ दिनोंतक गुरुदेवकी ही सेवामें रहकर आप उनके उपदेशामृतका पान करते रहे। जब आपने धर्मोद्धारका समय देखा तब भारतभ्रमणके लिये निकल पड़े, उत्तर भारतसे लेकर दक्षिण भारतके प्राय: समस्त तीर्थोंका आपने परिभ्रमण किया और अपने उपदेशोंद्वारा धार्मिक जगत्‌में एक नवीन जागृति फैला दी। फिर अन्य स्थानोंमें भी जा-जाकर आपने कितने पाप-परायण जीवोंका उद्धार किया, इसकी कोई गणना नहीं की जा सकती।

कुछ समयके अनन्तर आप फिर काश्मीरकी ओर चले गये और वहाँ जाकर आपने वेद-भाष्योंकी रचना की। तत्पश्चात् आपका पदार्पण पेशावर तथा काबुलकी ओर हुआ। उधरके यत्किंचित् हिन्दुओंका जीवन विधर्मियोंके दबावसे संकटमय था, अत: आपने कई स्थानोंपर अपनी योगशक्तिके प्रभावसे हिन्दुओंकी रक्षा की। जहाँ-जहाँ आपने हिन्दुओंकी रक्षा की, वहाँ-वहाँपर अबतक आपके स्मारक बने हुए हैं। उसी समय सिन्धके हिन्दुओंपर भी यवनोंका बड़ा भारी अत्याचार हो रहा था। वहाँके ठट्‌ठा नामक नगरमें यह हालत थी कि हिन्दूलोग मन्दिरोंमें आरती करते समय यवनोंके भयसे घण्टा-शंख भी नहीं बजा पाते थे और खुलेआम पाठ-पूजा तो बन्द थी ही। यह सुनकर आप शीघ्र ही वहाँ पहुँचे और अपने योगबलसे वहाँके राजाको परास्त करके आपने हिन्दुओंको धार्मिक स्वतन्त्रता दिलायी। इसी प्रकार आपने जहाँगीर बादशाहको भी एक बार अपने योगबलका परिचय देकर प्रभावित किया था और काबुलके वजीर खाँ नामक मुसलमानपर तो आपकी योगशक्तिका प्रभाव जादूकी तरह पड़ा था। वह आपके उपदेशोंके प्रभावसे भगवान् श्रीकृष्णका अनन्य भक्त बन गया और ***'हे कृष्ण विष्णो मधुकैटभारे'***की ध्वनि लगाने लगा। तात्पर्य यह कि आपने लोकहितके लिये थोड़े नहीं, असंख्य चमत्कार दिखलाये और अपनी कीर्ति-ध्वजाको सारे देश-देशान्तरोंमें फहरा दिया। स्थानाभावके कारण आपकी अन्य अलौकिक लीलाओंका वर्णन यहाँ नहीं आ सकता और न आपके बहुमूल्य उपदेश ही यहाँ दिये जा सकते हैं। जिन्हें आपके जीवनकी अनन्त घटनाओं तथा आपके दिव्य उपदेशोंको जानना हो, उन्हें श्रीचन्द्रप्रकाश, उदासीनधर्मरत्नाकर, उदासीनमंजरी प्रभृति ग्रन्थोंका अवलोकन करना चाहिये। उदासीन-सम्प्रदायके प्रचारद्वारा सनातन-धर्मका दिग्विजय कराते हुए आप १५० वर्षतक इस धराधामपर विद्यमान रहे; परंतु फिर भी वृद्धावस्था आपके पास फटकीतक नहीं। आप अपने योगबलसे सदा नौजवान ही बने रहे। जब आपके निर्वाणका अवसर आया तब आप चम्बाकी पार्वत्य गुफाओंमें जाकर तिरोहित हो गये, इसी कारण आपकी निर्वाणतिथिका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। ठट्‌ठा, वारहठ, श्रीनगर, कान्धार और पेशावर—ये पाँच आपके मुख्य निवासस्थान थे। आपके बाद आपके अनेकों शिष्य भी बड़े-बड़े सिद्ध तथा सन्त हुए और उन्होंने भी विश्वका बड़ा हित किया।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रातः ५।५८ बजेतक	गुरु	स्वाती रात्रिमें ३।१२ बजेतक	९ अप्रैल	× × × ×
तृतीया रात्रिमें १।३८ बजेतक	शुक्र	विशाखा ,, १।५३ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** दिनमें २।३९ बजेसे रात्रिमें १।३८ बजेतक, **वृश्चिकराशि** रात्रिमें ८।१२ बजेसे।
चतुर्थी ,, ११।५१ बजेतक	शनि	अनुराधा ,, १२।५० बजेतक	११ ,,	**संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें १०।० बजे, **मूल** रात्रिमें १२।५० बजेसे।
पंचमी ,, १०।२४ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा ,, १२।७ बजेतक	१२ ,,	**धनुराशि** रात्रिमें १२।७ बजेसे।
षष्ठी ,, ९।१९ बजेतक	सोम	मूल ,, ११।४८ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ९।१९ बजेसे, **मेष-संक्रान्ति** रात्रिमें १०।२८ बजे, **वैशाखी, मूल** रात्रिमें ११।४८ बजेतक। **खरमास समाप्त।**
सप्तमी ,, ८।४३ बजेतक	मंगल	पू०षा० ,, ११।५८ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।० बजेतक।
अष्टमी ,, ८।३८ बजेतक	बुध	उ०षा० ,, १२।३८ बजेतक	१५ ,,	**मकरराशि** प्रातः ६।८ बजेसे, **श्रीशीतलाष्टमीव्रत।**
नवमी ,, ९।३ बजेतक	गुरु	श्रवण ,, १।४७ बजेतक	१६ ,,	× × × ×
दशमी ,, ९।५९ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा रात्रिमें ३।२५ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।३१ बजेसे रात्रिमें ९।५९ बजेतक, **कुम्भराशि** दिनमें २।३५ बजेतक, पञ्चकारम्भ दिनमें २।३५ बजे।
एकादशी ,, ११।२२ बजेतक	शनि	शतभिषा रात्रिशेष ५।५ बजेतक	१८ ,,	**वरूथिनीएकादशीव्रत** (सबका), **श्रीवल्लभाचार्य-जयन्ती।**
द्वादशी ,, १।६ बजेतक	रवि	पू०भा० अहोरात्र	१९ ,,	**मीनराशि** रात्रिमें १।६ बजेसे, **सायन वृषराशिका सूर्य** रात्रिमें १०।१० बजे।
त्रयोदशी ,, ३।६ बजेतक	सोम	पू०भा० प्रातः ७।५१ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३।६ बजेसे, **सोमप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी रात्रिशेष ५।१२ बजेतक	मंगल	उ०भा० दिनमें १०।२६ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** दिनमें ४।९ बजेतक।
अमावस्या अहोरात्र	बुध	रेवती ,, १।४ बजेतक	२२ ,,	**मेषराशि** दिनमें ४।९ बजेसे, **पञ्चक समाप्त** दिनमें १।४ बजे, **श्राद्धकी अमावस्या**
अमावस्या प्रातः ७।११ बजेतक	गुरु	अश्विनी ,, ३।३२ बजेतक	२३ ,,	**अमावस्या**

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ८।५५ बजेतक	शुक्र	भरणी सायं ५।४४ बजेतक	२४ अप्रैल	**वृषराशि** रात्रिमें १२।१२ बजेसे।
द्वितीया ,, १०।१७ बजेतक	शनि	कृत्तिका रात्रिमें ७।३४ बजेतक	२५ ,,	**श्रीपरशुराम-जयन्ती।**
तृतीया ,, ११।१३ बजेतक	रवि	रोहिणी ,, ८।५५ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११।२६ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, अक्षयतृतीया।**
चतुर्थी ,, ११।३८ बजेतक	सोम	मृगशिरा ,, ९।४५ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।३८ बजेतक, **मिथुनराशि** दिनमें ९।२० बजेसे, **भरणीका सूर्य** दिनमें २।४३ बजे।
पंचमी ,, ११।३१ बजेतक	मंगल	आर्द्रा ,, १०।५ बजेतक	२८ ,,	**आद्यजगद्गुरु श्रीशंकराचार्य-जयन्ती।**
षष्ठी ,, १०।५३ बजेतक	बुध	पुनर्वसु ,, ९।५९ बजेतक	२९ ,,	**कर्कराशि** दिनमें ३।५९ बजेसे, **श्रीरामानुजाचार्य-जयन्ती, श्रीगंगासप्तमी।**
सप्तमी ,, ९।४८ बजेतक	गुरु	पुष्य रात्रिमें ९।२३ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** दिनमें ९।४८ बजेसे रात्रिमें ९।४ बजेतक, **मूल** रात्रिमें ९।२३ बजेसे।
अष्टमी ,, ८।१९ बजेतक	शुक्र	आश्लेषा ,, ८।३० बजेतक	१ मई	**सिंहराशि** रात्रिमें ८।३० बजेसे, **श्रीसीतानवमी।**
नवमी प्रातः ६।२९ बजेतक	शनि	मघा ,, ७।१५ बजेतक	२ ,,	**मूल** रात्रिमें ७।१५ बजेतक।
एकादशी रात्रिमें २।६ बजेतक	रवि	पू०फा० सायं ५।४९ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।१५ बजेसे रात्रिमें २।६ बजेतक, **कन्याराशि** रात्रिमें ११।२५ बजेसे, **मोहिनी एकादशीव्रत (स्मार्त्त)।**
द्वादशी ,, ११।४१ बजेतक	सोम	उ०फा० दिनमें ४।१२ बजेतक	४ ,,	**एकादशीव्रत (वैष्णव)।**
त्रयोदशी ,, ९।१४ बजेतक	मंगल	हस्त प्रातः ४।३२ बजेतक	५ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें १।४१ बजेसे, **भौमप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी सायं ६।४८ बजेतक	बुध	चित्रा ,, १२।५३ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** सायं ६।४८ बजेसे, **व्रतपूर्णिमा, श्रीनृसिंहचतुर्दशीव्रत।**
पूर्णिमा दिनमें ४।३० बजेतक	गुरु	स्वाती ,, ११।२० बजेतक	७ ,,	**भद्रा** प्रातः ५।३९ बजेतक, **वृश्चिकराशि** रात्रिशेष ४।१८ बजेसे, **श्रीबुद्धपूर्णिमा, श्रीबुद्धजयन्ती, वैशाख-स्नान** समाप्त।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

पुरुषका पाप

प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपके विचार पापपूर्ण हैं। आपको तुरंत अपनी चाल बदलनी चाहिये। निर्दोष स्त्रियोंपर होनेवाले इस प्रकारके अत्याचारोंने ही स्त्रियोंके मनोंमें पुरुषोंके प्रति घृणा उत्पन्न की है। पत्नीका यह धर्म कदापि नहीं है कि वह आपके पापमें सहायता करे। शराब पीये, व्यभिचार करे और आपकी व्यभिचार-प्रवृत्तिमें सहायक हो। आपका मानो कोई धर्म ही नहीं है। याद रखिये—स्त्री पुरुषकी गुलाम नहीं है, दासी नहीं है। वह अर्धांगिनी है, सखी है। उसका भी अधिकार है। उसके भी मन है, उसकी भी अपनी इच्छाएँ हैं, उसका भी अपना गौरव है। वह पत्थरकी शिला नहीं है। सुख-दु:खका अनुभव उसे भी होता है। आपका धर्म है—उसे सुख पहुँचाना, उसे मित्र मानकर उसको अपने बराबर समझना, उसकी इच्छाको मान देना और उसको पापमें प्रवृत्त करनेकी बात तो कभी सोचना ही नहीं। स्त्री-पुरुष एक-दूसरेके पूरक हैं। आपका जो बर्ताव अपनी पत्नीके प्रति है और उसे आप पत्नीके पातिव्रत्य धर्मके नामपर न्याययुक्त सिद्ध करना चाहते हैं, यह आपकी और भी हृदयहीनता है। इससे आप बड़ा धोखा खायेंगे। उसके साथ सद्व्यवहार करके उसके हृदयका मूक आशीर्वाद लीजिये। जहाँ स्त्री दुखी होकर रोती है, वह घर नष्ट हो जाता है। और जो पुरुष हृदयहीन होकर पत्नीको दु:ख देता है, उसे अगले जन्मोंमें विधवा स्त्री होकर विविध दु:ख भोगने पड़ते हैं। सावधान हो जाइये। शेष भगवत्कृपा।

(२)

पापको घटाइये

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपने ब्राह्मण-जातिमें जन्म लिया है और आप व्याकरणके तीन खण्डोंमें उत्तीर्ण और चतुर्थमें अनुत्तीर्ण हैं। फिर भी आपने यह बहुत बुरा काम किया है। किसी भी व्यक्तिकी मलिन वासनाको जगानेमें सहायता करना—सो भी अपने इन्द्रियसुखके लिये—मनुष्यकी बड़ी नीचाशयता है। उस विधवा बहनको आप सगी बहन मानकर उसकी सहायता करते, उसे इन्द्रियदमनके शुभ मार्गमें प्रेरित करते तो वह आपका धर्म था, पर आपने बड़ी भूल की। तन-मन-धनका अर्पण तो भगवान्के प्रति होना चाहिये। यह अर्पण नहीं, वासनाकी गुलामी है, मोहवश अपनेको पतनके गर्तमें गिराना है। घर-परिवारके लोग इस बातसे नाराज हैं और आपको समझाते हैं तथा आपके न माननेपर विरोध करते हैं, सो उनका विरोध करना उचित ही है। आपका अपनी माँ-बहन-भाई किसीसे प्रेम नहीं है, सो ठीक ही है। विषयवासनामें फँसे हुए मनुष्यमें प्रेम कहाँ रहता है। वह तो अन्धा है। आपकी पत्नी अच्छी है, उससे ढाई सालकी एक बच्ची है, पर वह पत्नी आपको पैसेभर भी पसन्द नहीं है—यह आपका दुर्भाग्य है। जो कुछ हो, अब जबकि आपने उस विधवा बहनके साथ भी विवाह कर लिया है, तब उसको निबाहना भी आपका कर्तव्य हो गया है। किसीके जीवनको बिगाड़कर उसे छोड़ देना भी पाप है, अवश्य ही अभी तो आप छोड़ भी नहीं सकते। वासनाकी बाढ़में बह जो रहे हैं। तथापि आपका यह लिखना कि 'मैं लोभ-लालचमें फँसकर इस बुराईमें फँस गया। पर अब तो वह उम्मीद भी खत्म हो रही है।' इससे यह अनुमान होता है कि आपने उस विधवासे कुछ और भी लाभ उठानेकी आशा की होगी और अब वह नहीं पूरी होती दीखती है, तब ऐसी बातें आपके मनमें आने लगी हैं। यह बड़ी नीची मनोवृत्ति है। मेरी रायमें आप अब दोनों स्त्रियोंको रखिये। दोनोंका समान

भावसे पालन कीजिये और यथासाध्य दोनोंमें प्रेम बना रहे, ऐसी चेष्टा करते रहिये। पापका स्वरूप जितना छोटा हो, उतना ही अच्छा है। साथ ही—कातर भावसे भगवान्से प्रार्थना कीजिये। यदि उस विधवा बहनके तथा आपके मनमें अब भी पवित्र भाव आ जाय और आपलोग शारीरिक सम्बन्धका त्याग कर दें तो पाप और भी घट जायगा। भगवान्की विश्वासपूर्वक की हुई प्रार्थनासे ऐसा होना असम्भव नहीं है। शेष भगवत्कृपा।

(३)

दो प्रकारकी आत्महत्या

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला। धन्यवाद। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) 'आत्महत्या' दो प्रकारकी होती है—एक लौकिक, एक पारमार्थिक। विष खाकर, आगमें जलकर, पानीमें डूबकर या किसी अस्त्र-शस्त्रका अपने ही ऊपर प्रहार करके जो अपने शरीर एवं जीवनको जान-बूझकर नष्ट कर दिया है, उसका नाम लौकिक आत्महत्या है। इसका परिणाम लोक-परलोक दोनोंमें बड़ा भयंकर होता है। मनुष्य जिस क्षणिक दुःख, शोक या मनस्तापसे मुक्त होनेके लिये आत्महत्या करता है, वह अनन्तगुणा होकर अनन्त कालतक उसे परलोकमें कष्टदायक होता है। आत्महत्यासे केवल स्थूल शरीरका नाश होता है। सूक्ष्म शरीर तो रहता ही है, उसीके द्वारा वास्तवमें सुख-दुःखका अनुभव करता है। और जो मानव-शरीर पाकर भी ज्ञान या भक्तिका साधन नहीं करता—अपनेको इस संसार-बन्धनसे मुक्त करनेके लिये बताये हुए शास्त्रीय प्रयत्नोंकी ओरसे जीवनभर उदासीन रहता है, वह भी आत्महत्या ही करता है। यह पारमार्थिक दृष्टिसे आत्महत्या है। लौकिक आत्महत्यासे केवल स्थूल शरीरका अन्त होता है, परंतु दूसरे प्रकारकी जो आत्महत्या है, वह जीवको अनन्तकालतक जन्म-मृत्यु एवं नरक-यन्त्रणाके चक्करमें डाले रखती है।

(२) ऊपर जिसे लौकिक आत्महत्या कहा है, उसमें और शरीरहत्यामें कोई अन्तर नहीं है।

(३) किसीके अस्तित्वको रखना या न रखना यह ईश्वरके अधीन है। जिसने अस्तित्व दिया है, वही उस वस्तुके अस्तित्वको मिटा सकता है। स्पष्ट शब्दोंमें यों समझना चाहिये, जो जन्म या जीवन दे सकता है, वही मारनेका भी अधिकार रखता है। जो किसीको जिला नहीं सकता, वह किसीको मारनेका भी अधिकारी नहीं है। हमारा शरीर हमारे कर्मानुसार भगवान्ने हमको दिया है, अतः वे ही जब चाहें, ले सकते हैं। यदि हम उसे भार मानकर अपनी ओरसे मिटानेका यत्न करते हैं तो पापके भागी होते हैं।

(४) देशभक्ति भी एक धर्म है। वह धर्मसे भिन्न नहीं है। अधर्मसे देशभक्ति नहीं हो सकती। देश-भक्तिका साधन भी धर्म ही है। आजके जगत्में धर्मकी अपेक्षा देशभक्तिको महत्त्व दिया जाता है, ऐसा नहीं मानना चाहिये। धर्म छोड़नेसे देशभक्तिका होना सम्भव नहीं है। जिसका नैतिक चरित्र गिरा हुआ है, वह सच्चा देशभक्त नहीं है, वह देशभक्तिका ढोंग करता है, वह अपनी आचारहीनताके द्वारा देशको रसातलकी ओर ले जानेवाला है। देशभक्तकी सच्ची कसौटी यह है कि उसका चरित्र बहुत ऊँचा हो। जो लोग देशभक्तिका ढोंग करनेवाले किसी दुराचारीको महत्त्व देते हैं, वे देशभक्तिके पवित्र आदर्शको जानते ही नहीं हैं। शेष भगवत्कृपा।

एतावान् सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया । जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः ॥

मनुष्य-जन्मका यही—इतना ही लाभ है कि चाहे जैसे हो—ज्ञानसे, भक्तिसे अथवा अपने धर्मकी निष्ठासे जीवनको ऐसा बना लिया जाय कि मृत्युके समय भगवान्की स्मृति अवश्य बनी रहे। (श्रीमद्भा० २। १। ६)

कृपानुभूति

'को कृपाल संकर सरिस'

मेरी एवं मेरे परिवारकी भगवान् शंकरमें पूरी आस्था एवं निष्ठा है। मेरे दिनकी शुरुआत शिवको जलाभिषेकसे होती है। मेरा यह मानना है कि ईश्वरीय सत्तामें जिसे पूर्ण विश्वास हो, भला उसका कोई क्या बिगाड़ सकता है। इसी भावबोधकी एक घटना, जो मेरे साथ घटी, वह इस प्रकार है—

मैं २५ जनवरी २००१ ई० को पंजाब नेशनल बैंककी गांधीधाम (कच्छ, गुजरात) शाखासे वरिष्ठ प्रबन्धकके पदसे सेवानिवृत्त हुआ। सदैवकी भाँति हम पति-पत्नी अगले दिन २६ जनवरीको शिव-दर्शन एवं जलाभिषेकके लिये मन्दिर गये। भगवान् शंकरको अभी जलाभिषेक शुरू ही किया था कि पृथ्वीमें कम्पन होने लगा एवं गड़गड़ाहटकी तेज आवाजके साथ मन्दिर हिलने लगा। मन्दिर-परिसरमें ही एक तरफ भगवती अम्बाका मन्दिर, दूसरी तरफ रामदरबार एवं तीसरी तरफ शिव-परिवार विराजित था। मैंने धर्मपत्नीको बाहर लानेके लिये उनका हाथ पकड़ा, परन्तु भूकम्पकी तीव्रताकी वजहसे हाथ छूट गया। भूकम्पने विकराल रूप ले लिया था। मैं यह सोचते हुए कि पत्नी मेरे पीछे-पीछे आ रही है, तेज दौड़कर मन्दिरसे बाहर निकला। आश्चर्य, मेरे बाहर निकलते ही मन्दिरका प्रमुख गुम्बद, जिसके नीचे मैं अभी-अभी खड़ा था, जमीनपर आ गिरा। पूरा मन्दिर खण्डहरमें बदल चुका था। मन्दिरसे बाहर निकलनेके सारे रास्ते उस मलबेने बन्द कर दिये। उस समय मन्दिरमें हम दो ही थे। मन्दिरके बाहर चारों तरफ हाहाकार और 'बचाओ-बचाओ' का करुण क्रन्दन सुनायी दे रहा था। अनेक बहुमंजिली इमारतें मेरी आँखोंके सामने धूल-धूसरित होती दिखायी दे रही थीं। एक ही पलमें हँसी चीत्कारोंमें बदल चुकी थी। यमराजरूपी उस प्रलंयकारी भूकम्पने कुछ ही क्षणोंमें हजारों जानें लील ली थीं। विनाशके बाद ही उस प्रलंयकारी भूकम्परूपी दानवकी भूख शान्त हुई थी।

मन्दिरका मलबा मेरे सामने पड़ा था। मेरी चिन्ता बढ़ गयी कि पत्नीका क्या हुआ? मैं मन-ही-मन ईश्वरीय सत्ताको याद कर रहा था। **'ॐ नमः शिवाय'** का जप अनवरत चल रहा था। आँखोंमें आँसू थे। बार-बार आवाजें लगानेपर भी कोई जवाब नहीं मिल रहा था। मेरा जप अनवरत चल रहा था। उसी समय हर्ष और आश्चर्यमिश्रित घटना घटी, करीब पन्द्रह मिनट के अन्तरालके बाद पत्नीको मन्दिरके पिछवाड़ेसे आते देखा। आँखोंपर सहसा विश्वास नहीं हुआ। उसके मुँहसे शब्द नहीं निकल रहे थे। उसके चेहरेपर भय और विषादकी लकीरें साफ दिखायी दे रही थीं। आँखें आँसुओंसे आप्लावित थीं। कुछ शान्त होनेके बाद उसने बताया कि मेरा हाथ छूटनेके बाद वह शिवलिंगका सहारा लेकर बैठ गयी और प्राणरक्षाहेतु भगवान् शंकरसे आर्तनाद करने लगी। पूरा मन्दिर जो एक विशाल चबूतरेपर ८-१० फुटकी ऊँचाईपर स्थित था, मलबा बन चुका था। भगवान् आशुतोषकी कृपासे शिव-परिवारका मन्दिर इस तरह टूटा कि पत्नीकी देहपर एक खरोंचतक नहीं आयी एवं ८-१० फुट नीचे कूदकर उसने अपनी जान बचायी।

ईश्वरीय अनुकम्पा देखिये कि अगर मैं बाहर निकलनेमें कुछ क्षणोंकी भी देरी करता तो उस विशाल गुम्बदकी चपेटमें आकर मृत्युको वरण कर चुका होता और यदि मेरी पत्नी मेरे पीछे-पीछे आती तो गुम्बदकी चपेटमें आकर उसकी मृत्यु निश्चित थी। भगवान् शंकरको कोटि-कोटि नमन, जिन्होंने इस प्रलंयकारी भूकम्पसे हम दोनोंके जीवनकी रक्षा की। भगवान् शंकरके समान भला कौन कृपालु हो सकता है। इस घटनासे मेरे निम्नलिखित मतको और अधिक पुष्टि मिली—

जरत सकल सुरबृंद बिषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस॥

—गोविन्दलाल सोनी

पढ़ो, समझो और करो

(१)

सकारात्मक सोच

रामधनको कौन नहीं जानता। रिक्शा चलाते हुए बीस बरस हो गये। शहरका बच्चा-बच्चा रामधनको सर-आँखोंपर बिठाता है। वह बच्चोंका प्यारा-दुलारा जो है। यदि कोई बच्चा बीमार हो गया हो, स्कूलकी बस छूट गयी हो, कभी बच्चोंमें परस्पर झगड़ा हो गया हो, घरमें अकेला रह गया हो, बच्चेको अस्पताल ले जाना हो, बस्तेका वजन ज्यादा हो तो रामधनको बुला लो। वह सदैव तैयार मिलेगा। बशर्ते कि वह किसी सवारीको कहीं ले नहीं जा रहा हो। यदि आपको उसे बुलाना है तो आपके पास उसके फोन नम्बर जरूर होंगे। यदि न भी हो तो चिन्ताकी कोई बात नहीं। राह चलते किसी भी आदमीसे, किसी मजदूरसे, दुकानदारसे, नौकरी पेशावालेसे या ठेलावाले—किसीसे भी उसका नम्बर पूछ लो, बता देगा। आदमी कामवाला है ना। बुलानेपर तत्काल पहुँच जाता है रिक्शा लेकर आपके पास। यदि आपको रेलवे स्टेशनपर जानेकी जल्दी हो, बस पकड़नी हो, बैंकमें जानेको साधन नहीं हो तो रामधनकी सेवाएँ प्रस्तुत हैं।

उस दिन सोनी अस्पतालमें एक महिला रोगीको खूनकी जरूरत थी। मुझे खून देना था। जानेका साधन रातके ग्यारह बजे भला कैसे सम्भव है। तत्काल रामधनको फोन किया तो उत्तर मिला, 'बाबूजी! रोडवेजवाले चौराहेपर हूँ। अभी आया, जल्दी हो तो आप चौराहेकी ओर आइये और मैं इधरसे प्रस्थान कर रहा हूँ। आप निश्चिन्त रहिये, दस मिनट भी नहीं लगेंगे अस्पताल पहुँचनेमें।'

देखते-ही-देखते रामधनका रिक्शा आँख झपकते ही सामने आ खड़ा हुआ और चल दिया अस्पतालकी ओर। रामधन सभी आवश्यक स्थानोंका पूरा रास्ता जानता है। खुशमिजाज रामधन पूछने लगा।

'बाबूजी! घरपर सब ठीक-ठाक तो है ना! इस भाग-दौड़की जिन्दगीमें किसीको बात करनेकी भी फुरसत नहीं मिलती। मैं तो रोज देखता हूँ, रास्ते सुनसान नहीं रहते। भीड़भरे रास्तोंमें कई बार वाहनोंकी रेलमपेलमें दुर्घटनाका खतरा बना रहता है। यह तो बरसों रिक्शा चलाते-चलाते मेरा हाथ साफ हो गया है, नहीं तो रोज ही एक्सीडेंटका खतरा बना रहता है।' बातचीत चल ही रही थी कि सामनेसे एक टैक्सीवाला तेज गतिसे गलत साइडसे आ रहा था। उसकी टैक्सीका पिछला भाग मेरे रिक्शेसे टकराते-टकराते बचा। टैक्सीवाला रुका तब रामधनने कहा, 'भैया! गलत साइड मत चला करो', किन्तु वह नौजवान अपनी गलती नहीं मानते हुए कहने लगा—'तुम्हें दिखाई नहीं दे रहा था कि मैं सामनेसे आ रहा हूँ। बेवकूफ कहींके। रिक्शा चलाना नहीं आता तो क्यों चलाते हो', और क्रोधित होकर गालियोंकी बरसात करने लगा। रामधन कुछ नहीं बोला, मुसकराता रहा, कहने लगा—'भैयाजी! गलती हो गयी। माफ करना। मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।'

'चोरी और सीना जोरी' वाली कहावतको चरितार्थ होते देखकर मैंने रामधनसे कहा—'भैया! गलती उसकी थी, गलत साइडसे वह आ रहा था और सटकर निकलना क्या उसकी गलती नहीं थी। तुम तो रामधन बहुत सीधे हो। उसकी गालियाँ सुनते रहे और क्षमा माँगते रहे। ऐसा क्यों? ईंटका जवाब पत्थरसे देना चाहिये था।'

'बाबूजी! दुनियामें बहुतसे लोग स्वच्छ भारत मिशनके कूड़ा-कचरेसे भरे ट्रककी तरह होते हैं। वे लोग बहुत सारा कूड़ा अपने दिमागमें भरकर चलते हैं। जिन चीजोंकी जीवनमें आवश्यकता ही नहीं होती, उन्हें भी वे ढोते रहते हैं, जैसे क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, तनाव, निराशा, चिन्ता, अहंकार आदि उनके दिमागमें कूड़ेकी तरह भरा रहता है और जब यह कूड़ा अधिक हो जाता है, तो वे अपना बोझ कम करनेके लिये दूसरोंपर

फेंकनेका अवसर ढूँढ़ते रहते हैं, इसलिये मैं ऐसे लोगोंसे दूरी बनाये रखता हूँ; क्योंकि उनके द्वारा गिराया गया कूड़ा मैंने स्वीकार कर लिया तो मैं भी स्वच्छता मिशनवाला कूड़ेका ट्रक बन जाऊँगा। स्वच्छ भारत मिशनकी तरह मानसिक सफाई अभियान आवश्यक है, ताकि लोगोंके मन-मस्तिष्कसे कूड़ा हट सके और अपने पास-पड़ोसके लोगोंपर वह कूड़ा गिरता न रहे। मेरी सोच है कि यह जिन्दगी बड़ी खूबसूरत है, अत: जो हमसे अच्छा व्यवहार करते हैं, उन्हें धन्यवाद कहो और जो अच्छा व्यवहार नहीं करते, उन्हें मुसकराकर माफ कर दो। बाबू साहब! सभी रोगी अस्पतालमें नहीं होते, कुछ मानसिक रोगी हमारे इर्द-गिर्द खुलेमें घूमते रहते हैं। आप जानते हैं यदि खेतमें बीज नहीं डाला जाय तो प्रकृति उसे घास-फूससे भर देती है। इसी तरह यदि मस्तिष्कमें सकारात्मक विचार नहीं भरे जायँ तो नकारात्मक विचार उनकी जगह बना लेंगे। यह सही है कि जिसके पास जो होता है, वही तो बाँटता है। ज्ञानी ज्ञान बाँटता है और भ्रमित भ्रम बाँटता है।

इसीलिये मैं सकारात्मक सोचके साथ गलती सामनेवालेकी होनेपर भी मुसकराकर क्षमा माँगनेमें अपना हित समझता हूँ।

रामधनकी यह सकारात्मक सोच मुझे जीवनकी बहुत बड़ी सीख दे गयी, जो हर मानवके लिये हितकर है।—**शंकरलाल माहेश्वरी**

(२)

ईमानदारी आज भी जिन्दा है

घटना सन् १९८९ ई०के अक्टूबर माहकी है। मैं जिला गुना-म० प्र० का निवासी हूँ। मेरे पिताजीका इलाज चल रहा था। उनकी तबियत चार माहसे खराब थी। मैं अपने वर्तमान मकान अशोकनगरमें रहकर उनका इलाज करा रहा था। शारदीय नवरात्रका समय था। पिताजी कहने लगे कि 'अब घर चलो। खेतीका समय आ गया।' उस समय सड़कें थीं नहीं, पैदल चलना पड़ता था, अथवा ऊँट-घोड़ेकी सवारी मिलती थी। अशोकनगरसे ४०कि०मी० तकका पैदल रास्ता पार करके घर पहुँचना होता था। बारिश समाप्त होनेके पश्चात् ही कच्चे रास्तोंपर अपनी सवारी ट्रैक्टर, बैलगाड़ी आदि चल पाती थी। पिताजीके कहनेपर मैं अशोकनगरसे अपने गाँवतक पैदल चलकर घर पहुँचा। वहाँसे खेतीके लिये डीजल लेनेके लिये चला एवं २०० लीटरका ड्रम ट्रैक्टरपर बाँधकर हम पिताजीको लेने अशोकनगर अपने मकानपर पहुँचे। रात्रि विश्राम किया, सारे दिन अशोकनगरमें खेतीके लिये डीजल, और घरके लिये किरानेका सामान खरीदा, फिर शाम हो गयी तो अशोकनगरमें ही रात्रिविश्राम करके सुबह सब सामान बाँधकर ट्रैक्टरपर रखकर घरको चले। मेरे साथ पिताजी, मेरी धर्मपत्नी, दोनों बच्चे, ड्राइवर और एक हेल्पर था। रास्तेमें मुझे ठण्ड देकर मलेरिया बुखार हो आया। मुझे बेचैनी-सी हो गयी। मेरे हाथमें एक बैग था, जिसमें मेरी धर्मपत्नीकी करीबन दो-ढाई तोलेकी सोनेकी चैन, दो अँगूठी, पाँवकी पायजेब दो जोड़, एक सोनेकी गोल, मकानकी रजिस्ट्रीके कागजात, मेरे परिवारके फोटोका एलबम, बारह बोर बन्दूकका लायसेन्सका कागज, पिताजीके नामका ३१५ बोरका लायसेन्सका कागज रखा था। उसी बैगमें मेरा पर्स भी था, उसमें कुछ पैसे भी थे। मेरा छोटा भाई जो मुझसे लगभग दस साल छोटा है, वह भी साथ था। वह अशोकनगरमें रहकर कक्षा ९ की पढ़ाई कर रहा था। उसी बैगमें उसका स्कूलका परिचय-पत्र था, जो बैगके साथ ट्रैक्टरसे कहीं टपककर गिर गया। जब घर आकर हमने सामान ट्रैक्टरसे उतारकर घरपर रखा तो वह बैग कहीं नजर नहीं आया। मैंने अपनी पत्नीसे पूछा तो उसने कहा, आपके ही पास था। अब तो सब सकते में आ गये। इतना सामान, जरूरी कागजात, अब क्या हो? कैसे पता चले? पर कुछ दिन बाद ही भैंसरवास तहसील अशोकनगरका जो वर्तमानमें आज जिला है, वहाँका एक आदमी हाथमें बाबू

सिंह जादौन (वागड़ी)-का पत्र लेकर एवं दोनों लायसेन्स एवं छोटे भाईका स्कूलका परिचय-पत्र लेकर द्वार पूछता हुआ पिताजीके पास आया। उसने पिताजीको बाबू सिंह भैंसरवासवालोंका पत्र दिया, जिसमें लिखा था 'पण्डितजी! मेरे गाँवके किसी व्यक्तिको आपका बैग मिल गया था, वह मेरे पास लेकर आया तो मैंने मन्दिरपर ४-५ लोगोंके समक्ष बैग खोलकर देखा, उसमें कागजात, रकम, जेवर और पर्समें फोटो तथा रुपये पाये, जो मेरे पास सुरक्षित हैं।

मैंने यह आदमी आपके पास भेजा है और आपसे प्रार्थना है कि आप अपने बेटेको मेरे पास भेज दें, जिससे मैं उन्हें अपने घर भोजन कराकर ब्राह्मण-दक्षिणा देकर आपका सामान लौटा सकूँ।' पिताजीने मुझसे कहा, तो मैं भैंसरवास गया। उन्होंने एलबमसे मेरा फोटो देखकर मुझे पहचानकर भोजन कराया, दक्षिणा दी और सब सामान जेवर आदि लौटा दिये। मैंने उन्हें धन्यवाद देकर कहा कि मैं आपका किस तरहसे आभार व्यक्त करूँ? तो वह सज्जन कहने लगे यह तो मेरा फर्ज था, जो मैंने अदा किया।

आज जब थोड़े-से पैसों या सम्पत्तिके लिये लोग आत्मीय सम्बन्धोंको भुला देते हैं, तो यह घटना तपते हुए मरुस्थलमें मरुद्यान-सी प्रतीत होती है। परंतु इस घटनाके आधारपर मैं यह कह सकता हूँ कि 'ईमानदारी आज भी जिन्दा है।'—**मनोज कुमार शर्मा**

(३)

गोमाताकी स्वामिभक्ति

मेरे एक सम्बन्धी चेन्नैमें काफी समयसे निवास कर रहे थे। २६ जून, २०१९ ई०, बुधवारको रात्रि ८.२० पर कैन्सर-व्याधिसे पीड़ित होनेके कारण उनका देहान्त हो गया। उनकी श्मशानयात्रा अगले दिन गुरुवार २७ जून २०१९ ई०को लगभग साढ़े ग्यारह बजे शुरू हुई। उसी इलाके से एक छोटी-सी सफेद गाय (बछिया) थी, जो रोज सुबह उनके घर ७.३० बजे से ८.०० बजेके बीच प्रसाद लेने आती थी। उसके लिये घरके द्वार उस समय पूरे खुले रहते थे। वह सदैव घरके अन्दर जाकर पूरी परिक्रमा करके बाहर निकलती थी। यह उसका नित्यका कार्य था।

शवयात्राके दिन रोजकी तरह गौमाता घर आयीं, परंतु उस दिन प्रसाद नहीं प्राप्त करके घरके बाहर ही खड़ी रहीं। दोपहर ११.३० बजे जब श्मशान यात्रा शुरू हुई तो वे भी साथ-साथ चलीं और दाह-क्रियाके दौरान एक तरफ खड़ी रहीं। यात्राके समय अनजान व्यक्तियोंने गौमाताको श्मशान-स्थलसे बाहर निकालनेकी कई बार कोशिश की, परंतु उनकी कोशिश हर बार नाकाम सिद्ध हुई। जब वे लोग गौमाताकी पूँछ पकड़कर बाहर निकालनेकी कोशिश करते, तो गौमाता कभी मारनेको भागतीं अथवा पीछेसे पैरोंसे लात मारने लग जातीं।

कुछ समयकी कोशिशके बाद वे लोग चले गये और गौमाता दाह-स्थलसे १०-१५ फीटकी दूरीपर एक जगह बैठ गयीं। दाह-संस्कार होनेतक वे लगभग दो घंटे बैठी रहीं।

उन्होंने न भोजन किया, न प्रसाद पाया, आँखोंसे आँसू निकलते रहे। कपाल क्रिया करनेके आधे घण्टे बाद श्मशान-स्थलसे जनता जब घरकी तरफ जाने लगी, तो गौमाता भी घरतक साथमें चलीं।

बादमें गौमाता तीसरे दिन घरपर आयीं, प्रतिदिनकी भाँति परिक्रमा करके प्रसाद एवं भोजन प्राप्त किया। तीसरे दिन घरके सदस्योंने चन्दन-कुंकुमसे पूजन करके उन्हें विदा किया।

आज पहलेकी तरह प्रतिदिन गौमाता घर आ रही हैं। रोज प्रसाद लेकर चली जाती हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि अबोल प्राणी भी अपना पालन-पोषण करनेवालेके प्रति स्वामिभक्ति रखते हैं।

—**भँवरलाल एम० जोशी**

मनन करने योग्य

गुरुकी अवहेलनाका दुष्परिणाम

एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण गोपबालकोंके साथ वनमें गोचारण कर रहे थे। सहसा गोपबालकोंके बीचमें कंसद्वारा प्रेषित महाबली दैत्य अरिष्टासुर आया। उसकी आकृति पर्वताकार साँड़-जैसी थी। वह अपने सिंहनादसे पृथ्वी और आकाशको गुँजा रहा था और सींगोंसे पर्वतीय तटोंको विदीर्ण कर रहा था। उसे देखते ही गोपियाँ, गोप तथा गौओंके समुदाय भयसे इधर-उधर भागने लगे। दैत्योंके नाशक भगवान्

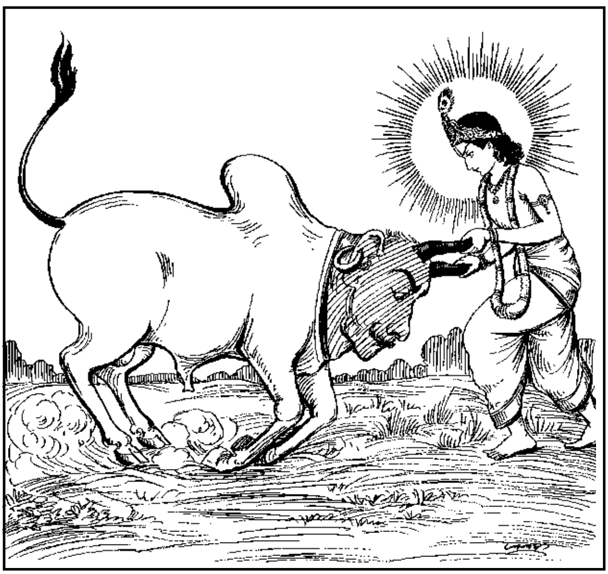

श्रीकृष्णने उन सबको अभय देते हुए कहा—'डरो मत।' माधवने उसके सींग पकड़ लिये और उसे पीछे ढकेल दिया। उस राक्षसने भी श्रीकृष्णको ढकेलकर दो योजन पीछे कर दिया। तब श्रीकृष्णने उसकी पूँछ पकड़ ली और बाहुवेगसे घुमाते हुए उसे उसी प्रकार पृथ्वीपर पटक दिया, जैसे छोटा बालक कमण्डलुको फेंक दे। अरिष्ट फिर उठा। क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो रहे थे। उस महादुष्ट वीरने सींगोंसे लाल पत्थर उखाड़कर मेघकी भाँति गर्जना करते हुए श्रीकृष्णके ऊपर फेंका। श्रीकृष्णने उस प्रस्तरको पकड़कर उलटे उसीपर दे मारा। उस शिलाखण्डके प्रहारसे वह मन-ही-मन कुछ व्याकुल हो उठा। उसने अपने सींगोंके अग्रभागसे पृथ्वीपर प्रहार करना आरम्भ किया, इससे पृथ्वीके भीतरसे पानी निकल आया। तब श्रीकृष्णने उसके सींग पकड़कर बार-बार घुमाते हुए उसे पृथ्वीपर उसी प्रकार दे मारा, जैसे हवा कमलको उठाकर फेंक देती है, जिससे उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। उसी समय वह वृषभका रूप त्यागकर ब्राह्मणशरीरधारी हो गया और श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें प्रणाम करके भक्तिसे गद्गद वाणीमें बोला—हे भगवन्! मैं बृहस्पतिका शिष्य द्विजश्रेष्ठ वरतन्तु हूँ। मैं बृहस्पतिजीके समीप पढ़ने गया था। उस समय उनकी ओर पाँव फैलाकर उनके सामने बैठ गया था। इससे वे मुनि रोषपूर्वक बोले—'तू मेरे आगे बैलकी भाँति बैठा है, इससे गुरुकी अवहेलना हुई है; अतः दुर्बुद्धे! तू बैल हो जा।' माधव! उस शापसे मैं वंगदेशमें बैल हो गया। असुरोंके संगमें रहनेसे मुझमें असुरभाव आ गया था। अब आपके प्रसादसे मैं शाप और असुरभावसे मुक्त हो गया। आप श्रीकृष्णको नमस्कार है। आप भगवान् वासुदेवको प्रणाम है। प्रणतजनोंके क्लेशका नाश करनेवाले आप गोविन्ददेवको बारंबार नमस्कार है।

यों कहकर श्रीहरिको नमस्कार करके बृहस्पतिके साक्षात् शिष्य वरतन्तु भुवनको प्रकाशित करते हुए विमानसे दिव्यलोकको चले गये।

इस प्रकार इस पौराणिक घटनासे यह बोध होता है कि अपने गुरुजनोंके प्रति व्यक्तिको आदरका भाव रखना चाहिये तथा उनके प्रति शिष्ट व्यवहार करना चाहिये, अन्यथा इसके दुःखद परिणाम होते हैं।

[गर्गसंहिता]

Saintly Readers,

This year **Kalyana-Kalpataru** proposes to publish **Upāsanā** Special Issue in **October 2020** as its **Annual Number**.

Upāsanā literally means to make the mind sit close to God. There are mainly two practical ways when state of mind evolves, the idea of God penetrates every pore of the body, either through the discipline of devotion that the devotee feels oneness with God through intense devotion or through the discipline of Knowledge, discarding the identification with the body, the self merges in God Himself. So either way our lives get sublimated. I hope this issue will benefit all of us.

Therefore, I solicit you to send us writes-up before **30th, June 2020**. The writes-up should be concise and lucid in typed forms. Topics are suggested below or any related matters.

Upāsanā Number

1. Stages of Upāsanā 2. What is the meaning of Upāsanā? 3. Rightful person for Upāsanā 4. The Mantras of Upāsanā 5. Upāsanā for betterment of beings 6. Devotional Spirit 7. Vaidika mystery of Upāsanā 8. Essence of Upāsanā 9. Psychological teaching of Upāsanā 10. Upāsanā according to scriptures 11. Upāsanā to attain God-realization 12. Mystery of syllable 13. Upāsanā in Upaniṣads 14. Different kind of Upāsanā—(a) Gāyatrī Upāsanā (b) Gītā Upāsanā (c) Devopāsanā (d) Sūryopāsanā (e) Śrī Rāma Upāsanā (f) Hanumat Upāsanā (g) Śrī Kṛṣṇa Upāsanā (h) Śakti Upāsanā (i) Śivopāsanā (j) Jyotiṣopāsanā (k) Navagraha Upāsanā(l) Saguṇa and Nirguṇa Upāsanā (m) Mantra Upāsanā (n) Viṣṇu Upāsanā (o) Gaṇeśa Upāsanā (p) Sarasvatī Upāsanā (q) Lakṣmī Upāsanā (r) Pañcadevopāsanā 15. Upāsanā of Śabarī 16. Use of Magical formulae in Upāsanā 17. Impact of prescribed flowers used in Upāsanā 18. Foremost Upāsanā—Nāmopāsanā 19. Annihilation of various impediments by true Upāsanā 20. Worship of worshipped 21. Upāsanā in Vaiṣṇava Sect 22. All-round effect of Upāsanā 23. Upāsanā in Nimbārka Sect 24. Awakefulness of Ātmā through Upāsanā 25. Upāsanā by all limbs 26. Upāsanā in Śākta Sect 27. Why effect of Upāsanā or Sādhanā not visioned immediately? 28. Different Upāsanā—a comparative viewpoints 29. Upāsanā of Uddhava, Gopikās, Sūradāsa, Mīrābāī, and Tulasīdāsa 30. Upāsanā in Rāmacaritamānasa 31. Upāsanā in different religions—(a) Jain (b) Bauddha (c) Islam (d) Christianity (e) Zoroastrian 32. Kinds of Upāsanā 33. Characteristics of Upāsanā 34. Obstacles in Upāsanā

—Editor

Send articles at the following address—
Editor—Kalyana-Kalpataru, P. O. Gita Press, Gorakhpur—273005 (U. P.)

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१-प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर, २-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक

३-मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—केशोराम अग्रवाल, (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये), राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

४-सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका, राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

५-उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं:—गोबिन्दभवन-कार्यालय, १५१, महात्मा गाँधी रोड, कोलकाता (पश्चिम बंगाल सोसाइटी पंजीयन अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत पंजीकृत)।

मैं केशोराम अग्रवाल गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

केशोराम अग्रवाल (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये)—प्रकाशक

प्र० ति० 20-02-2020
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2020–2022

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT	LICENCE No. WPP/GR–03/2020–2022

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्संगकी सूचना

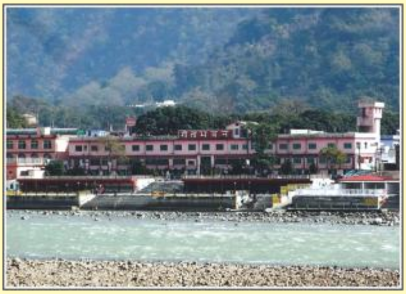

गीताभवन, स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें ग्रीष्मकालमें सत्संगका लाभ श्रद्धालु एवं आत्मकल्याण चाहनेवाले साधकोंको प्रारम्भसे ही प्राप्त होता रहा है। **पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी चैत्र शुक्ल द्वादशी (५ अप्रैल)-से सत्संगका विशेष आयोजन प्रारम्भ किया जायगा, जो लगभग तीन मासतक चलेगा।** इस अवसरपर संत-महात्मा एवं विद्वद्गणोंके पधारनेकी बात है। **गीताभवनमें चैत्र एवं आश्विन नवरात्रमें श्रीरामचरितमानसका सामूहिक नवाह्न-पाठका कार्यक्रम रहता है।** गीताभवनमें आयोजित दुर्लभ सत्संगका लाभ श्रद्धालु और कल्याणकामी साधकोंको अवश्य उठाना चाहिये।

पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी द्विजातियोंका सामूहिक यज्ञोपवीत-संस्कार दिनांक २७ मई (ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी)-को होना निश्चित हुआ है, जिसकी पूजा २६ मईको प्रारम्भ हो जायगी। इच्छुक जनोंको २५ मईतक गीताभवन पहुँच जाना चाहिये।

गीताभवनमें संयमित साधक-जीवन व्यतीत करते हुए सत्संग-कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। यहाँ आवास, भोजन, राशन-सामग्री आदिकी यथासाध्य व्यवस्था रहती है।

महिलाओंको अकेले नहीं आना चाहिये, उन्हें किसी निकट सम्बन्धीके साथ ही यहाँ आना चाहिये। गहने आदि जोखिमकी वस्तुओंको, जहाँतक सम्भव हो, नहीं लाना चाहिये।

सत्संगमें आनेवाले साधकोंको **आधार कार्ड** अथवा फोटोयुक्त अन्य **पहचान-पत्र** रखना आवश्यक है।

व्यवस्थापक—गीताभवन, पो०-स्वर्गाश्रम—२४९३०४

श्रीराधा-माधव अङ्क अब ग्रन्थरूपमें उपलब्ध

सुहृद् पाठकों—श्रद्धालु भक्तोंको श्रीराधा-माधवकी मधुरातिमधुर लीलाओंका दर्शन कराने-हेतु जनवरी 2019 के विशेषांकरूपमें श्रीराधा-माधव अङ्कका प्रकाशन किया गया था, इसमें मुख्य रूपसे श्रीराधा-माधवकी उपासनाके विविधरूप, श्यामसुन्दर एवं राधारानीकी अन्तरंग तथा बाह्यलीलाओंके सहचर, भक्तवृन्दोंकी रोचक कथाओंकी प्राथमिकता है जो साधकों तथा आस्तिकजनोंके लिये परम मंगलमय एवं हितकारी है। **अब यह विशेषांक बिना मासिक अंकोंके अलगसे ग्रन्थरूपमें उपलब्ध है।** (कोड 2235) **मूल्य ₹ १४०।** आप स्वयं मँगवाना चाहते हों अथवा किसी आत्मीयजनको रजिस्ट्रीसे भेजना चाहते हों तो डाकखर्च ₹ ५० नहीं लगेगा।

श्रीमद्भागवतकथा आदि शुभ अवसरोंपर प्रसादरूप वितरित करनेवालोंके लिये विशेष छूट उपलब्ध है। विशेष छूट पानेके लिये मो०नं० 8545857113, 7985282936, 998488988 पर सम्पर्क करना चाहिये।

☛ booksales@gitapress.org
थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
☛ gitapress.org
सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये
गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005
book.gitapress.org
gitapressbookshop.in